भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प नं.

ॐ

सिद्धेभ्य

श्री पुष्पदन्त कविकृत

यशोधरचरित्र

हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति – १००० प्रति

मूल्य – १० रुपये

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर्स,
अलीगढ़

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशकीय

श्री पुष्पदन्त कविकृत यशोधरचरित्र का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

राजा यशोधर के भवों का वृत्तान्त जानने पर, किसी भी जीव के प्रति वैरभाव करने से कितने ही भवों तक वह बैरभाव लम्बित होना जानने से जीव अपने परिणाम में वैराग्यभावनापूर्वक सावधान रहता है।

जिसके फल में अनेक भवोंपर्यन्त भीषण दुःख भोगने पड़ते हैं, ऐसे अपने मिथ्याभावों से बचने की प्रधान प्रेरणारूप इस कथा में, पत्नी के दुष्कर्म से वैराग्य पाकर जिनदीक्षा ग्रहण करने का इच्छुक राजा यशोधर, अपनी माता की ममता के कारण माता की आज्ञा का पालन करने के लिये आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाता है, इससे वह मरकर वह मोर होता है। जिस माता की आज्ञा पालन करने के फल में मोर हुआ है, वही माता मरकर बिल्ली होकर पुत्र / मोर को मारती है! फिर भी कितनी ही कुयोनि के भवों में माता का जीव पुत्र के जीव को ही मारता रहा! ममता से मातृ-आज्ञा पालन में गृहीतमिथ्यात्व का पोषण या अनुमोदन करने का यह फल! इसलिए आत्महित इच्छुक जीव को किसी भी सगे-सम्बन्धी या उपकारी किसी भी व्यक्ति की लिहाज-शर्म में आकर अथवा मान बढ़ाई के लिये अथवा ममता या भय से उसके किसी भी मिथ्यात्ववर्धक कार्य में जुड़ना नहीं, पोषण नहीं देना अथवा अनुमोदन नहीं करना, भले ही समाज में मान न मिले। क्योंकि इस कथा में बना उस प्रकार अनेक भवपर्यन्त दुर्गति भ्रमण और भयंकर दुःख का भोग स्वयं को अकेले ही करना पड़ेगा तथा जिसकी आज्ञा पालन करने के फल में यह पाप किया, उसी माता ने भव-भव में स्वयं को मारा, वह माता भी भव के बाद अत्यन्त प्रिय ऐसी सगी बहिन बनी! इसलिए करुणा से पूज्य गुरुदेवश्री कहते थे कि 'किसको प्रसन्न करना और किससे प्रसन्न रहना! एक आत्मा का हित कर लेने का यह भव है।'

भगवान महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि में से प्रवाहित और कुन्दकुन्दादि वीतरागी दिगम्बर सन्तों द्वारा गृहित गम्भीर वचनों का रहस्य समझानेवाले पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्त बहिनश्री चम्पाबहिन के आत्मसाधना से स्वर्णपुरी आज विश्वधरा पर अध्यात्म तीर्थधाम के रूप में सुविख्यात हुआ है। दोनों उभय ज्ञानी-धर्मात्माओं के अन्तःस्थल में पुराण पुरुषों के प्रति व्याप्त अहोभाव उनके प्रवचनों एवं तत्त्वचर्चाओं में अभिव्यक्त हुआ है, उसी से प्रेरणा पाकर

स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ द्वारा अनेक पौराणिक ग्रन्थों एवं कथासाहित्य का प्रकाशन किया गया है। प्रस्तुत प्रकाशन भी इसी शृंखला की एक कड़ी है।

सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों का उपदेश होता है, उसमें प्रथम अनुयोग का नाम प्रथमानुयोग है। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग और करणानुयोग में जो वर्णन है, उसकी दृष्टान्त द्वारा प्रसिद्धि, प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग के अभ्यास से तीनों अनुयोगों का समझना सरल बनता है।

प्रथमानुयोग के अभ्यास से—

❖ पुराण-पात्रों के प्रसंग पढ़ने-विचारने से दृढ़ता होती है कि क्रमबद्ध अनुसार - होनहार अनुसार परिणमते हुए परिणमन काल में उसके योग्य पुरुषार्थ होता ही है; क्रमबद्ध अनुसार पुरुषार्थ होता ही है, कर्तृत्वपूर्वक करना नहीं पड़ता परन्तु सहजरूप से उसके योग्य पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता, इसलिए मुझे कर्तृत्वपूर्वक पुरुषार्थ करने का बोझा भी नहीं रहता। मैं तो मात्र ज्ञातारूप से रहता हुआ एक ज्ञायकभाव हूँ।

❖ जीवों के भूतकाल के और भविष्य काल के निश्चित परिणामों का वर्णन जानकर क्रमबद्धपर्याय की यथार्थ श्रद्धा द्वारा अकर्तास्वभाव के सन्मुख हुआ जाता है।

❖ संसारी जीवों के पापमय परिणामों होने पर भी उनकी क्षणिकता समझने से स्वभाव में संसार की गन्ध भी नहीं है, ऐसा महिमावन्त ज्ञायक मैं हूँ - ऐसी दृढ़ता होती है।

❖ एक जीव दूसरे जीव पर क्रोध करे तो उसके संस्कार भव-भव तक रहते हैं, राग करे तो उसके संस्कार भी भव-भव तक नहीं छूटते और कुदेव-गुरु-धर्म के सेवन से नरक-निगोद में चिरकाल भ्रमण करके फिर से मनुष्य होने पर कुधर्म के संस्कार पुन: जागृत हो जाना जानकर, जीव को वीतरागधर्म की आराधना की विशेष जागृति रहती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। तदर्थ उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं। मुद्रण कार्य के लिये स्मृति ऑफसेट सोनगढ़ के प्रति आभारी हैं।

सभी जीव यशोधरचरित्र से शिक्षा ग्रहण करते हुए पाप की अनुमोदनारूप परिणाम से बचें, इसी भावना के साथ....

साहित्य प्रकाशन समिति
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़

ॐ

सिद्धेभ्य

श्री पुष्पदन्त कविकृत

यशोधरचरित्र

जो अनेक द्वीप तथा समुद्रों से वेष्टित है तथा अनेक सम्पदाओं का स्थान है—ऐसे जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में यौधेय नामक देश है। वह देश धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारों पुरुषार्थों के उपकरणों का उत्पत्ति स्थान है।

इस देश में कुकवियों की भाँति भ्रमरों के समूह भ्रमण करते हैं क्योंकि कुकवियों के हृदय भी काले हैं और भ्रमर भी काले हैं। इस देश की शोभा का वर्णन करते हुए कितना कहना? विधाता ने स्वर्गलोक की ईर्ष्या से मानो कि दूसरा स्वर्गलोक ही बनाया है कि जिस देश में धन-धान्य, वन-वाटिका आदि से सुशोभित ग्राम-नगर आदि हैं।

इस यौधेय नामक देश में एक राजपुर नामक विशाल नगर था। उस राजपुर नामक नगर में मारिदत्त नामक राजा राज्य करता था।

वह राजा धन देने में कर्ण-समान, वैभव से इन्द्र-समान, रूप से कामदेव-समान, कान्ति से चन्द्रमा-समान, प्रचण्ड दण्ड देने में यमराज-समान और अन्य राजाओं के बलरूप वृक्ष को मूल से उखाड़ फेंकने में प्रचण्ड पवन के समान था। वह राजा धन और धान्य के रक्षण में चतुर था, परन्तु एकमात्र धर्म से अनभिज्ञ था। उसमें यौवन मद और धन मद की प्रबलता थी

किन्तु एक धर्म के बिना प्रचुर अन्धकार व्याप्त हो रहा था। सत्य ही है कि ज्ञान के उदय बिना सारभूत शुभमार्ग का अवलोकन किस प्रकार हो सकता है!! सत्य ही है कि उत्तम ज्ञानियों के बिना धर्म की प्राप्ति किस तरह हो सकती है!!

महाराज मारिदत्त के धन-धान्य से पूर्ण राजपुर नगर में भैरवाचार्य का आगमन हुआ। वह भैरवाचार्य जगत को-अपने अनुकूल पुरुषों को निज मत की शिक्षा देता था। वह भैरवाचार्य कान में मुद्रा धारण करता; बत्तीस अंगुल प्रमाण दण्ड हाथ में रखता था; गले में योगवृत्ति, पैर में पावड़ी धारण करता था; नृसिंगा की आवाज करता और सिंह पूंछ का गुच्छा लगाकर अपने को महात्मा प्रसिद्ध करता था। लोगों के पूछे बिना ही अपनी स्तुति करते हुए कहता था कि—

'चार युग व्यतीत होने पर भी मैं वृद्ध नहीं हुआ; नल, नहुप, वेलु आदि महाप्रतापी और पृथ्वी के भोक्ता महाराजा मेरे सामने ही हो गये हैं; राम और रावण के घोर संग्राम में राक्षसों का पतन मैंने देखा है; भाईयों सहित युधिष्ठिर को देखा है तथा कृष्ण की आज्ञा से विरुद्ध अभिमानी ऐसे दुर्योधन को भी देखा है। मैं चार युग से जीवित हूँ, उसमें तुम किंचित् भी भ्रम नहीं करो।

मैं सभी लोगों को शान्ति प्रदान करूँगा। मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि अति प्रचण्ड वेगयुक्त दिवाकर के विमान को अवरोध कर सकता हूँ। मुझे समस्त ही विद्याओं की उपलब्धि है; यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र तो मेरे आगे-आगे चलते हैं' - इत्यादि बातें करते हुए लोगों को रंजित करता हुआ नगर में भ्रमण करता था।

जब उसकी कथा पूरे नगर में प्रसारित हो गयी, तब महाराजा

मारिदत्त को भी सुनने को मिली। उन्होंने उस समय अति कोतुकवश होकर मन्त्री से कहा कि 'तुम एकान्त में जाकर उस गुणगरिष्ठ भैरवाचार्य को नम्रतापूर्वक यहाँ लेकर आओ।'

मन्त्री ने कहा—'महाराज की आज्ञा अनुसार मैं अभी उन्हें लेकर आता हूँ।'

इस प्रकार मन्त्री ने विनयपूर्वक राजा का आदेश सुनाकर भैरवाचार्य से कहा—'अहो महात्मन्! आपके दर्शन से महाराज को शीघ्र शान्ति हो।'

भैरवाचार्य—'यदि राजा की ऐसी ही इच्छा है तो मैं शीघ्र ही जाकर राजवंश में शान्ति स्थापित करूँगा।' ऐसा कहकर मन्त्री के साथ वह राजदरबार में उपस्थित हुआ। वहाँ उसने तेजपुंज नारायणतुल्य महाराज को सिंहासन पर विराजित देखा। तत्पश्चात् राजा ने भी अनेक आडम्बरयुक्त भैरवाचार्य को देखकर सिंहासन से उठकर, सामने जाकर दण्डवत् नमस्कार किया।

भैरवाचार्य ने आशीर्वाद मुद्रा में कहा—'महाराज का कल्याण हो। राजन्! मैं साक्षात् भैरव हूँ; आपकी जो इच्छा हो, वह प्रगट करो, मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

इस प्रकार सुनकर महाराज ने प्रसन्नचित्त होकर भैरवाचार्य को उच्चासन पर स्थापित किया और स्वयं उनके चरणों में बैठकर प्रार्थना करने लगा :

महाराज—'स्वामिन्! मेरे कष्ट दूर करो। नाथ! आप तो सृष्टि संहारक योगीश्वर हैं। आपके चरणों के प्रसाद से मेरे मनोभिलाषित कार्य की सिद्धि होगी। मैं आपका सेवक हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होओ। आप जो आज्ञा करोगे, मैं उसे शिरोधार्य करके पूर्ण करूँगा।'

दुष्ट परिणामी भैरवाचार्य मन में विचार करने लगा कि मैं जो-जो उपदेश दूँगा, उससे मेरे इन्द्रियसुख की पूर्ति होगी और मैं जो आदेश करूँगा, उसका पालन होगा। इस प्रकार विचार करते हुए उसने कहा—'नृपवर! मुझे समस्त ऋद्धियाँ लक्ष्यमात्र से स्फूरायमान होती हैं। मुझे सभी विद्यायें सिद्ध हैं, मैं संहार करने में पूर्ण समर्थ हूँ, जो कोई मुझसे महान पदार्थ की याचना करता है, उसे तत्काल देता हूँ। मेरे लिये कुछ भी पदार्थ अलभ्य नहीं है।'

महाराज—'हे देव! आकाशमार्ग से गमन करने की मेरी अभिलाषा है।'

भैरवाचार्य—'नृपवर! तुम राजकुल के प्रकाशक चन्द्रमा हो, यदि तुम निर्विकल्प चित्त से मेरा उपदेश ग्रहण करोगे तो अवश्य तुम्हें आकाशमार्ग से गमन कराऊँगा।'

सत्य है कि जो गृहीतमिथ्यात्व से लिप्त होता है, वह ज्ञानीजनों के उपदेश को ग्रहण नहीं करता। जिस प्रकार अन्धा मनुष्य, सुमार्ग-कुमार्ग का अवलोकन नहीं करता जैसे अंकुश की प्रेरणा से हाथी की सूँढ़ सब ओर गमन करती है; उसी प्रकार भैरवाचार्य की प्रेरणा से मारिदत्त का चित्त जीवों की हिंसा में तत्पर होकर सब ओर गमन करने लगा। यद्यपि मारिदत्त भव्य है परन्तु अशुभोदय से कुगति के योग से कुमार्ग के प्रति गमन करने लगा।

उस मारिदत्त राजा के प्रचण्ड शत्रुओं की विध्वंसकारिणी चण्डमारी नाम की कुलदेवी, बेतालकाल (सन्ध्या समय) माँस का अवलोकन करती राजपुर नामक नगर की दक्षिण दिशा में स्थित आवास में निवास करती थी। जिसने गले में नरमुण्डों की

माला धारण की थी, शरीर राख से लिप्त था, सर्पाच्छादित चरणयुगल, माँस रहित भयंकर अस्थि-चर्म, मयूर शिखा समान कठोर और उन्नत केश, मृतकों की आँत से विभूषित भुजा इत्यादि महावीभत्स रूप धारण करती हुई चण्डमारी देवी, जीवों को पीड़ित करती हुई जिनेन्द्रमार्ग का तिरस्कार करती थी। वह देवी हिंसामार्ग को प्रगट करती हुई, दयाधर्म को दूर भगाती हुई, नग्नशरीरवाली, माँस खाने के लिये मुँह फाड़े हुए, कपाल-कबन्ध और त्रिशूल धारण करती हुई बैठी थी और उसी का भक्त मारिदत्त राजा था।

भैरवाचार्य—'राजन! यदि आकाशमार्ग का पथिक बनना हो और विद्याधर शत्रुओं को विजय करके दिग्विजय करनी हो तो जलचर, नभचर और स्थलचर जीवों के युगलों का चण्डमारीदेवी के लिये हवन करो। ऐसा करने से तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध होंगे।'

महाराज—'आचार्यवर! आपकी आज्ञा-अनुसार कोतवाल को भेजकर सभी प्रकार की जाति के जीवों के युगल मँगाता हूँ।'

इस प्रकार कहकर महाराज ने कोतवाल को बुलाने के लिये अमात्य से कहा कि कोतवाल को बुलाकर समस्त ही जातियों के जीवों के युगल चण्डमारीदेवी के मन्दिर में एकत्रित करो।

अमात्य—'जैसी महाराज की आज्ञा। मैं इसी समय कोतवाल को बुलाकर आपका हुकम सुनाता हूँ।'

कोतवाल—(अमात्य से) 'मैं आपकी आज्ञा अनुसार उपस्थित हुआ हूँ, मेरे लिये क्या हुकम है?'

अमात्य—'महाराज ने आदेश दिया है कि जलचर, नभचर

और स्थलचर तथा समस्त जाति के जीवों के युगल चण्डमारीदेवी के मन्दिर में एकत्रित करने के लिये नौकरों को आज्ञा करो।'

कोतवाल—'जैसी आज्ञा। अभी किंकरों को बुलाकर जीवों को लाने का आदेश विदित करता हूँ।'

इस प्रकार कहकर कोतवाल ने तत्काल किंकरों को बुलाया और समस्त जीवों के युगल लाने की आज्ञा दी। पश्चात् उन हिंसक किंकरों ने सर्वत्र भटककर समस्त जीवों के युगल चण्डमारीदेवी के मन्दिर में एकत्रित करके कोतवाल को तत्सम्बन्धी सूचना दे दी।

कोतवाल—'श्री महाराज! आपकी आज्ञानुसार सभी युगल उपस्थित हैं। अब क्या आज्ञा है?'

महाराज—'स्वामिन! (भैरवाचार्य) आपकी आज्ञानुसार सर्व युगल उपस्थित हो गये हैं।'

भैरवाचार्य—'तो अब देवी के मन्दिर की ओर चलना चाहिए।'

महाराज—'जैसी आज्ञा।'

इस प्रकार कहकर, मन्त्री आदि सभी चण्डमारीदेवी के मन्दिर की ओर गमन करने लगे। वहाँ पहुँचकर रुधिर से व्याप्त और चक्र, त्रिशूल तथा खड्ग धारण किये हुए चण्डमारीदेवी को देखकर राजा जय-जय ध्वनिपूर्वक प्रार्थना करने लगा—'हे परमेश्वरी! अपने निर्मलस्वभाव से मेरे पापों का हरण करो।'

तत्पश्चात् मन्दिर में स्थित नभचर, जलचर और स्थलचर जीवों के युगलों का अवलोकन करके महाराज मारिदत्त ने भैरवाचार्य से निवेदन किया—'स्वामिन! आपकी आज्ञानुसार

समस्त युगल उपस्थित हैं, अब कार्य की शुरुआत करें।'

भैरवाचार्य—'राजन! समस्त युगल, देवी के सन्मुख उपस्थित कराओ, मैं कार्यारम्भ करता हूँ।'

तत्पश्चात् समस्त युगल, देवी के सन्मुख उपस्थित करके हवन प्रारम्भ हुआ। मारिदत्त राजा, चण्डमारी चन्द्रिका के अग्र भाग में अनेक प्रकार के मृगादि समस्त जीवों को मारता है। वह मूढ़मति पर को मारकर अपने जीवितव्य की वांछा और शान्ति की कामना करता है।

विषभक्षण से जीवितव्य की आशा, बैल के सींग से दूध की आशा, शिलातल में धान्य की प्राप्ति, नीरस भोजन से कान्ति में वृद्धि, उपशमभाव बिना क्षमा, और परजीवों को मारकर शान्ति वृद्धि क्या हो सकती है? नहीं! नहीं! कदापि नहीं!!

वह अविवेकी मारिदत्त राजा जिस समय तृणभोजी गाय आदि पशुओं को मारने में तत्पर था, उस समय भैरवाचार्य समस्त युगलों का अवलोकन करके फिर राजा से कहने लगा—

भैरवाचार्य—'नृपवर! आपने समस्त युगल तो एकत्रित किये, परन्तु मनुष्य युगल तो मँगाया ही नहीं।'

महाराज—'आपकी आज्ञानुसार मनुष्य युगल भी मँगाता हूँ।'

—ऐसा कहकर चन्द्रकर्म कोतवाल को बुलाकर राजा ने आज्ञा दी कि प्रशंसा योग्य मनुष्य का युगल शीघ्र लेकर आओ।

कोतवाल—'जैसी आज्ञा पृथ्वीनाथ की। मैं अभी किंकर को आदेश देकर उत्तम मनुष्य युगल मँगाता हूँ।'

—ऐसा कहकर, किंकर को बुलाकर कोतवाल ने कहा कि

अति मनोज्ञ मनुष्य युगल को शीघ्र लाकर उपस्थित करो।

किंकर—'आपके आदेशानुसार शीघ्रतर यहाँ-वहाँ से मनुष्य युगल को लाकर आपके सन्मुख उपस्थित करता हूँ।'

तत्पश्चात् अनेक किंकर नरयुगल को खोजने के लिये नदी के किनारे, नगर, उद्यान, उपवन, पर्वत और गुफा आदि में गमन करने लगे। वहाँ उस हिंसा के अवसर में पार्थिवानन्द नामक वन में संघसहित सुदत्त नामक आचार्य पधारे।

❖ ❖ ❖

मदन का नाश करनेवाले श्री सुदत्ताचार्य ने वन का अवलोकन करके इस प्रकार कहा कि यहाँ पत्र और फलों का नाश हो रहा होने से इस वन में सम, दम और यमी सत्य पुरुषों को निवास करना उचित नहीं है।

तत्पश्चात् उग्र तप से दैदीप्यमान आचार्यवर यमस्थानतुल्य श्मशान स्थल में पहुँचे। वह श्मशान, सियारों द्वारा विदीर्ण मृतकों के समूह और भयंकर आवाज करते हुए कौवों तथा गृद्ध पक्षियों से भरपूर था। वह श्मशान निष्फल वृक्षों के शुष्क पत्तों, राक्षसों के मुख से निकलते उष्ण श्वास तथा शूली पर चढ़ाये हुए मृतकों के कलेवर से अत्यन्त भयंकर था।

वह स्थान चोरों के समूह से व्याप्त और माँसभक्षी पक्षियों तथा निशाचरों की आवाज से गूँज रहा था। उस भयानक स्थान में इन्द्र, चन्द्र, और नागेन्द्रों के समूह द्वारा स्तुति योग्य मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका—इस प्रकार चतुर्विध संघसहित श्री सुदत्ताचार्य प्रासुक और पवित्र शिला पर विराजमान हुए। यह मुनिसंघ जीवों की दया में तत्पर, महातपश्चरण द्वारा शरीर का

शोषण करता था। श्मशानस्थल में जिनदीक्षा का पालन करते हुए क्षुल्लक युगल कामदेव-नाशक परम ईश्वर गुरु को नमस्कार करके, उनकी आज्ञा लेकर भिक्षा के लिये गमन करने लगे।

वह क्षुल्लक युगल विविध लक्षणसहित गात्र, प्रहर्षित शरीर, कमलदलनेत्र, जिनचरणों के भक्त, विषयों से विरक्त, पाप मल और मद से रहित, जैनधर्म में पूर्ण आसक्त, निज गुणों से महान, निज शरीर की कान्ति से सूर्य को आच्छादित करते, हाथ में पात्र धारण किये हुए, नगर की ओर गमन करने लगा। उस समय निर्मल और तीक्ष्ण खडग हाथ में धारण किये हुए पापकर्म में तत्पर चन्द्रकर्मा किंकरों ने इन बालवय क्षुल्लक युगल को देखकर कहा :

किंकर—'हे बालयुगल! तुम्हारा प्राप्त होना अत्यन्त कष्ट साध्य था, जो सहज ही प्राप्त हो गया' - ऐसा कहकर वे युगल के निकट पहुँच गये। वहाँ दु:खनाशक, पाप विघातक, सुन्दर गात्र और लावण्यपूरित शरीरवन्त युगल को देखकर किंकर परस्पर वार्तालाप करने लगे।

एक—'भाई! सत्य कहना कि चाहे जितनी खोज करते तो भी कहीं ऐसा रूपवान युगल प्राप्त हो सकता था? कभी भी नहीं।'

दूसरा—'मित्र! इन्हें ले जाने से महाराज पारितोषिक तो अवश्य देंगे ही। भाई! इनके हाथ-पैर कितने कोमल हैं? इनका सौम्य शरीर कैसा हृदयग्राही है? अब शीघ्र इनको लेकर चलो, विलम्ब का समय नहीं है।'

तीसरा—'भाई! देखो तो सही, हमने इन्हें घेर लिया होने पर

भी इनके मुखमण्डल पर किंचित् भी मलिनता दिखायी नहीं देती।'

अन्य—'भाई! तू भी मूर्ख ही है। धैर्यवानों का किसी विपत्ति में मुख म्लान होता है? कभी भी नहीं।'

अन्य—'अरे भाई! तुम सब उत्तम श्रेणी के मूर्ख हो क्योंकि जैसे-तैसे करके इच्छित वस्तु का लाभ हुआ, उसमें भी अपनी-अपनी गप्प मारते हों और व्यर्थ में विलम्ब करते हो। अब शीघ्रता से इन्हें चण्डिका के मन्दिर में ले चलो।'

इस प्रकार सभी किंकर, क्षुल्लक युगल को चण्डिका के मन्दिर में ले गये।

❖ ❖ ❖

जिस समय किंकरों ने क्षुल्लक युगल का हाथ बाँधकर मनुष्यों को भयकारक मस्तक छेद करने की बात की, वे शब्द सुनकर मदन विजेता अभयकुमार नामक क्षुल्लक महाराज ने अपनी क्षुल्लिका बहिन को इस प्रकार सम्बोधन किया—

क्षुल्लक—'बहिन! इस अवसर में मरण की शंका करके किंचित् भी भय मत करना परन्तु भगवान वीतराग अरिहन्त देव को अपने हृदय में स्थापित करके इस प्रकार से विचार कर कि पूर्वभव में जिस अशुभकर्म का बन्धन किया है, उसके उदय से शारीरिक कष्ट अवश्य होता है; इस कारण कोई भी मेरे शरीर का छेदन करो, भेदन करो, मेरे शरीर के रस, रुधिर आदि का पान करो, माँस का भक्षण करो, गर्दन काटो परन्तु चिरकाल से जिस शान्तिभाव का अभ्यास किया है, उसके अनुसार मन को शान्त करनेवाले मुनिजन अष्ट गुण संयुक्त सिद्धपर्याय को प्राप्त हो जाते हैं।

कन्या! कोई राक्षस राजा तथा किंकर यदि अपने पौद्गलिक शरीर का घात करे तो करो परन्तु वे ज्ञानयुक्त अपने आत्मा का घात नहीं कर सकते। ऐसे अवसर में जैनधर्म की ही शरण का अनुसरण करना योग्य है।'

इस प्रकार अपने क्षुल्लक भाई के उपदेशयुक्त वचन सुनकर वह चन्द्रमुखी क्षुल्लिका इस प्रकार कहने लगी—

क्षुल्लिका—'भ्रातृवर! तुमने जो जिनसूत्रानुसार निर्मल और पवित्र उपदेश प्रदान किया है, वह सर्वथा योग्य है। मैंने आपके कथन से पूर्व ही यह विचार कर रखा है कि मेरे इस नाशवान शरीर का कोई भी घात करे परन्तु मैं मेरे जीवन को जीर्ण तृण समान गिनती हूँ। मैंने चिरकाल से जो उपशम का अभ्यास किया है, उसे ही निज हृदय में धारण करके कर्मोदय के फल को भोगूँगी।'

यह उपरोक्तानुसार परस्पर वार्तालाप करते हुए, जिनेन्द्र का स्मरण करते हुए क्षुल्लक युगल को, यमराज समान रुद्र पदातियों द्वारा भैरवानन्द के कुटुम्ब को आनन्दकारक देवी के मन्दिर की ओर ले जाया गया।

उस मन्दिर में वह भैरवाचार्य महाध्वनि करता हुआ, धनुष उठाता हुआ, लोहखण्ड को घुमाता हुआ, लोहखण्ड-पीतल के आभूषण धारण करता हुआ, हाथ में तीक्ष्ण छुरी रखता हुआ, अपने गुरुताभाव को प्रगट करता, अपना महत्त्व दिखाता, समस्त शरीर पर मृगचर्म लिपटा हुआ, पैर में घूँघरूँ से झनकार और थपथप शब्द करता हुआ तथा अपने केशों को खोलकर पिशाच समान पूर्ण माँसभक्षी सदृश चन्द्रिका के चरित्र का वर्णन करता, नृत्य करता अपूर्व दृश्य बना रहा था।

उसी समय चण्डिका अपने निवास में मुख में मस्तक खण्ड धारण करके नृत्य कर रही थी। वह देवीगृह पशुओं के रुधिर से सिंचित, पशुओं के हड्डियों की माला लटकती हुई, पशु की जीभ के पात्र से पूजा होती हुई, पशुओं की चर्बी के दीपक से प्रकाश होता हुआ इत्यादि भयंकर दशायुक्त देवीगृह में चण्डिकादेवी अनेक क्रीड़ा करती महा भयानक दृश्य दिखला रही थी।

माँस लोलुपी नरनाथ मारिदत्त भी उस देवीगृह में विराजमान था। देवीगृह में स्थित मारिदत्त महाराज ने समागत शान्तिमुद्रायुक्त अभयरुचिकुमार क्षुल्लक और चन्द्रमुखी क्षुल्लिका का अवलोकन करके, खड़े होकर इस प्रकार शब्दोच्चार किया—

महाराज—'श्रीमान क्षुल्लक महाराज और क्षुल्लिकाजी को मेरा सविनय नमस्कार।'

क्षुल्लक—'हे शुद्धवंश की लक्ष्मीरूप कमलिनी के हंस! हे राजगणेश! हे गुणश्रेणीयुक्त योगीराज! हे स्नेहपूर्ण दाता! हे फलयुक्त वृक्षवत नम्र! हे कलाकुलकलित कलाधर! हे जलपूरित समुद्रतुल्य गम्भीर! हे राजन! तुम्हारी धर्मवृद्धि हो।'

इस प्रकार पूर्ण निशाकर समान बालयुगल के शान्तिपूर्ण आशीर्वाद सुनकर महाराज मारिदत्त के हृदय में से समस्त रोष का विसर्जन हो गया। उस समय महाराजा अपने हृदय में विचार करने लगे।

आहाहा! कैसा अनुपमरूप विधाता ने बनाया है! हा! दुष्ट विधाता! ये दोनों सुकुमार बालक कहाँ आ गये? इन्होंने जो स्वजनों के सुख का त्याग किया, उस समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का भोग क्यों नहीं किया?

ये दोनों बालक आनन्दयुक्त प्रशंसायोग्य, विद्याधरों के इन्द्र अथवा नागेन्द्र का पाताल भेदकर आये हैं अथवा इस मध्यलोक के लक्ष्मी को देखने स्वर्ग में से सुरेन्द्र अथवा प्रभाधन चन्द्रमा आया है अथवा बालकों को वेष धारण करके मुरारी महादेव या कामदेव, इन दो में से कोई आया है अथवा अव्यक्तरूप धारण करके घृति, कान्ति, लक्ष्मी, शान्तिसहित अनेक सिद्धि की पृथ्वी है अथवा यश का स्थान, गुणों की श्रेणी, दुःखनाशक कवियों की वाणी और पुण्य की भूमि है? यह उपशान्त बदन शान्तमूर्ति चण्डमारीदेवी ही क्या मनुष्य का रूप धारण करके मेरी परीक्षा के लिये यहाँ आयी है अथवा मेरे कोई सम्बन्धी दीक्षा ग्रहण करके संसार का अन्त करने के लिये यहाँ उपस्थित हुए हैं?— इत्यादि चिन्तवन करते हुए महाराज मारिदत्त ने पुनः प्रगटरूप से क्षुल्लक से प्रश्न किया।

'अहो महानुभाव! आप कौन हो? क्या राज्य से भ्रष्ट होकर शत्रु के डर से, भोग रहे सुख को छोड़कर यहाँ आये हो? और यह शान्तमूर्ति महारूपवती कुलानन्ददायिनी कन्या किसकी पुत्री है? अहो! इस बाल अवस्था में व्रतपूर्वक दीक्षा, घर-घर में भिक्षा (आहार) और महान गुणों की परीक्षा एक से एक अद्भुत लगती है।

हे राजकुमार! हे मुनि! इस हमारे शुद्ध और कीर्ति गृहस्वरूप श्रेष्ठ नगर में इस कुमारीसहित आप किस प्रकार पधारे हैं? वह आपकी पापनाशक और सुखदायक कथा ज्ञात करायें।

❖ ❖ ❖

महाराज मारिदत्त के ऐसे वचन सुनकर, नृपति को हर्षोत्पादक क्षुल्लक महाराज इस प्रकार कहने लगे—

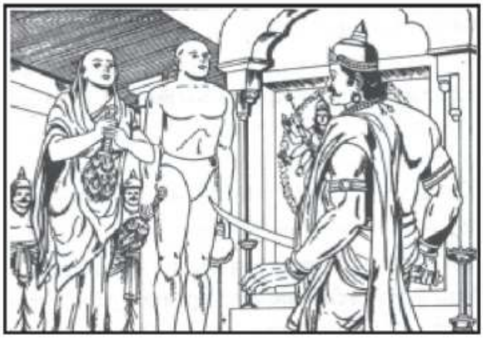

क्षुल्लक—'राजन! जिस प्रकार अन्धे के सामने नृत्य, बहरे के समीप गान, नपुंसक पुरुष के प्रति तरुणबाला के कटाक्षों का निक्षेपण, लवणरहित विविध प्रकार के व्यंजन, अज्ञानियों में तीव्र तप का आचरण, निर्बल की शरण, शुभध्यानरहित परन्तु अति रौद्रसहित पुरुष का समाधिमरण, निर्धन का नवयौवन, कृपण का धन संचय करना, निःस्नेही में कमनीय कामिनी का रमण, अपात्र को दान, मोहरूप धूल से धूसरित मनुष्य को धर्म का व्याख्यान, दुष्ट स्वभावी पुरुष से गुणों का वर्णन तथा रण में रुदन जैसे व्यर्थ / बेकार है, उसी प्रकार आपके सन्मुख हमारा चरित्र कहना व्यर्थ है क्योंकि सिर में शूल समान, जिनेन्द्र को नहीं माननेवाले पुरुष को, जो गुरु शुद्ध वचनों द्वारा परमागम का कथन करता है, वह शुद्ध दूध को सर्प के मुख में देकर अपना नाश करता है।'

क्षुल्लक महाराज अभी कहने लगे कि—'हे राजन! जैसे मूर्च्छित पुरुष को शीतल जल और पवन से सचेत किया जाता है; उसी प्रकार उपशान्त पुरुष को धर्मोपदेश दिया जाता है, परन्तु जिस प्रकार शुष्क वृक्ष का सिंचन व्यर्थ है; उसी प्रकार अविनयी को सम्बोधन भी व्यर्थ है।

नृपवर! मेरी जो कथा है, वह धर्मविद्या का उपदेश है, जो उत्तम पुरुषों को श्रवण और पूजनयोग्य है, इस कारण यदि मेरे चरित्र का श्रवण करना चाहते हो तो शान्तचित्त होकर श्रवण करो।'

इस प्रकार के अभयरुचिकुमार क्षुल्लक के वचन सुनकर उपशान्तहृदय बनकर महाराज मारिदत्त ने भम्भा, भेरी, दुन्दुभी और प्रचण्ड डमरू के शब्दों का निवारण करके, मनुष्यों की हिंसा के विनोद के निवारणपूर्वक, विनयपूर्वक क्षुल्लक महाराज से पुन: प्रार्थना की—

मारिदत्त—'हे दयापालक! हे स्वामिन! आपकी आज्ञानुसार अभी समस्त सभा सुनने के लिये स्तब्ध हो रही है। हे श्रमणेश! देखो, सब मनुष्य विनयसहित आपकी वाणी की अभिलाषा से कैसे बैठे हैं, कि मानो प्रवीण चित्रहार के रचे हुए चित्र ही हैं। अब आप अपने चरित्र का वर्णन करो।'

क्षुल्लक—'नृपवर! यदि तुम्हारी पूर्ण अभिलाषा हो तो मैं मेरा चरित्र कहता हूँ, उसे एकाग्र चित्त से श्रवण करो।

हे पृथ्वीपाल महाराज मारिदत्त! मैं दृष्ट श्रुतानुभूत रहस्य का आपके सन्मुख वर्णन करता हूँ।

❖ ❖ ❖

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पृथ्वी के तिलक समान अवन्ती नाम का देश है। उस रमणीक अवन्तीदेश में स्वर्गपुरी समान उज्जयिनी नामक नगरी है। उस नगरी का राजा महाप्रतापी यशोर्ध था।

वह क्षत्रिय कर्म का धारक राजा यशोर्ध यौवनावस्था में ऐसा शोभित होता था मानो गुणों का समुद्र अथवा तप का प्रभाव या पुण्य का समूह अथवा कला का समूह या कुल का आभूषण अथवा यश का भण्डार या न्याय का मार्ग अथवा जगत का सूर्य ही हो।

उस यशोर्ध नामक पृथ्वीपालक को काम की विद्या, काम की शक्ति, काम की दीप्ति, काम की कीर्ति, काम बाणों की पंक्ति, और काम के हाथ की वाणी समान चन्द्रमती नामक महारानी थी। उस महारानी के उदर से सुकवि की बुद्धि से काव्यार्थ की भाँति 'यशोधर' नामक (मैं) पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ।

राजन! जब मैं बाल्यावस्था में आया, तब पहले तो मेरी उम्र के बालकों के साथ घर में ही खेलने लगा। पश्चात् जब पढ़नेयोग्य हुआ, तब मेरे माता-पिता ने योग्य अध्यापक के निकट मुझे पढ़ने के लिये रखा। वहाँ पहले तो वर्ण-मात्रादि क्रम का शिक्षण प्राप्त किया। तत्पश्चात् क्रमपूर्वक व्याकरण, कोश, न्याय, काव्य, छन्द, अलंकार में निपुण हुआ। पश्चात् मैंने ज्योतिष, सामुद्रिक, वैद्यक का अभ्यास किया। तत्पश्चात् संगीत विद्या और नवरसयुक्त नृत्यकला तथा वाजिन्त्र बजाने की विद्या में भी जब प्रवीण हो गया, तब रत्नपरीक्षा, गजराज, घोटक, वृषभ आदि पशुओं की परीक्षा के शास्त्रों का मनन किया।

तत्पश्चात् चित्रलेखन, और काष्ठकर्म का भी अभ्यास हो गया। पश्चात् हाथी, घोटक आदि आरोहण, धनुष विद्या, युद्धकला, मल्लविद्या, जल तरण आदि अनेक कलाओं में प्रवीण हुआ। धरानाथ! जब मैंने लावण्यरूप जल से सिंचित तरुणता में प्रवेश

किया, तब यद्यपि मैं अंगसहित था, तथापि अनंग (कामदेव) समान दिखलायी देता था। जब माता-पिता को, मैं जवान हुआ ऐसा लगा, तब रूप-लावण्य की सरिता समान पाँच राजकन्याओं के साथ मेरा विवाह हुआ। मैं भी सुखसागर में ऐसा मग्न हुआ कि व्यतीत होते समय को किंचित् भी नहीं जान सका। तत्पश्चात् माता-पिता वैराग्य को प्राप्त हुए।

यशोर्ध महाराज चन्द्रमा के किरण समान उज्ज्वल केश को देखकर चिन्तवन करने लगे कि—'अरे दुःख! रतिरूप सपत्नी को मथनेवाली और दुर्भाग्य की राशि इस वृद्धावस्था ने क्या मेरे बाल को ग्रहण कर लिया? यह सफेद बाल ही मेरी वृद्धावस्था का सूचक है। इस वृद्धावस्था में मुख से जो लार गिरती है, वह ऐसी ज्ञात होती है कि मानो पुरुष के शरीर में से शक्ति ही लार का रूप धारण कर निकल रही है तथा वृद्ध के मुख में से जो दाँत गिरते हैं, वे मानो कि पापोदय से पुण्य की सृष्टि ही गिर रही है।

इस वृद्धावस्था में कामिनी की गति समान दृष्टि मन्द हो जाती है, उस समय हाथ में लकड़ी स्थिर नहीं रहती। यह सत्य ही है कि नयी आयी हुई जरारूपी वनिता के संसर्ग से लकड़ीरूपी स्त्री किस प्रकार स्थिर रह सकती है? इस वृद्धावस्था में कुकवि के काव्य की भाँति पैर भी नहीं चलते अर्थात् जिस प्रकार कुकवि के काव्य के पद चलते नहीं, उसी प्रकार वृद्ध पुरुष के पैर भी नहीं चल सकते।

वृद्ध पुरुष के शरीर में से जो लावण्यता नष्ट होती है, वह ऐसी ज्ञात होती है कि मानो जरारूप सरिता की अभंग तरंगों से धोयी हुई है।'

यशोर्ध महाराज विचार करने लगे कि 'देश, कोष, शास्त्र, सेना, अमात्य, गढ़, और मित्र – ये राज्य के सात अंग तथा दो हाथ, दो पैर, नितम्ब, कुला, पीज, और मस्तक–ये शरीर के आठ अंग किसी के भी त्रिभुवन में शाश्वत् स्थिर नहीं रहते। इसलिए मैं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य – इन दस धर्मों का पालन करता हूँ और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह त्याग इन पाँच महाव्रतों को धारण करता हूँ।

मैंने मेरी अज्ञानता से विषयभोगों में मग्न होकर अपने कुटुम्बियों के स्नेह में तल्लीन होकर इतना समय व्यर्थ बिगाड़ा है। मैंने इस बात का किंचित् भी विचार नहीं किया कि ये पंचेन्द्रियों के विषय, विषमिश्रित मिष्ठान की भाँति प्राणघातक और दुर्गतियों में ले जाकर अनेक दु:खों का पात्र बनाते हैं।'

यशोर्ध महाराज ने यह भी विचार किया कि 'यह पुत्र, मित्र, कलत्र आदि समस्त परिजनसमूह स्वार्थपरायण है। इसका विचार किये बिना उनके स्नेह में फँसकर उचित का विचार न करके पाप कार्यों में तत्पर हो रहा था परन्तु अब सर्व कार्यों का त्याग करके जिनदीक्षा ग्रहण करके महान तपश्चरणपूर्वक संसार भ्रमण से निवृत हो जाऊँगा।'—इत्यादि विचार करके महाराज यशोर्ध ने समस्त राज कर्मचारियों को अपने आन्तरिक विचार से अवगत कराया। उस समय समस्त कर्मचारीगण यद्यपि अपने हृदय में अत्यन्त दु:खी हुए परन्तु महाराज को दृढ़ देखकर कुछ भी कहने का सामर्थ्य नहीं कर सके और महाराज की आज्ञानुसार समस्त सामग्री एकत्रित करके यशोधर अर्थात् मुझे बुलाकर राजतिलक

किया। तत्पश्चात् यशोर्ध महाराज ने जैनपथ के पथिक बनकर वन की ओर गमन करके, वहाँ विराजमान जैनाचार्य के समीप जैनेश्वरी दीक्षा प्राप्त की।

राजन! यशोर्ध महाराज तो कामरूप मद के विघातक होकर शिव राज्य के लिये प्रयत्न करने लगे। यशोधर ने अर्थात् मैंने वृद्ध मन्त्रियों की सहायता से आन्वीक्षिकी राज्य विद्या द्वारा इन्द्रियविजयी ज्ञान प्राप्त किया। त्रयी नाम की विद्या से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षूद्र इन चारों ही वर्णों के आचार-विचार जाने; दण्ड नीति नामक विद्या से खोटे मदयुक्त दुष्टों को योग्य दण्ड का स्वरूप जाना और वार्ता नामक विद्या से धनादि संचय की रीति-नीति का शिक्षण प्राप्त किया।

तत्पश्चात् लोक नीतिज्ञ और धर्मज्ञ वृद्ध पुरुषों के संसर्ग से द्यूत (जुआ), माँस, सुरा, वेश्या, चौर्य, और परांगना - इन व्यसनों का त्याग करके क्रोध, मोह, मान आदि कर्मों का विसर्जन किया।

नृपवर! उस समय यशोधर / मैं काम विनोद का नाममात्र सेवन करता था, तथापि हर्षोत्पादक अंगों से निश्चित दूर रहता था। मन्त्रियों द्वारा विग्रह, यान, आसन, आश्रय आदि राज्य के अंगों का ज्ञान जिस समय मेरे हृदय में स्फुरायमान होने लगा, उसी समय से भृत्यसमूह काँपने लगा और निजकार्यों में तत्पर होने लगा। जो मुझसे भयभीत थे, वे नगर-ग्राम के निवास छोड़कर अरण्य में वास करने लगे। जो दुष्ट मन्त्रियों के बहकाये हुए राजा रणांगण में युद्ध के लिये आगे आये, वे चंचल बिजली के समान लुप्त हो गये और जो नम्र धराधीश थे, वे सुखपूर्वक निज जीवितव्य व्यतीत करने लगे।

नृपवर! रणांगण में यशोधर ने / मैंने दुर्निवार तलवार की धार से अन्य राजाओं का नाश किया और दिशाओं में व्याप्त अपने तेज से सूर्य और चन्द्रमा पर विजय प्राप्त की।

राजन! राजा यशोधर निज स्त्री के प्रेम में आसक्तचित्त होते हुए ऐसा विचार करने लगा कि स्वच्छमति, हंसगति, मेरी प्रिय भार्या अमृतमयी मेरे हृदय में वास करती, नेत्र के टिमकारमात्र विरह से व्याकुल हो जाती है, तो मैं भी उसके साथ भोग भोगूँगा; पश्चात् भले नृपपूज्य राज्य नष्ट हो जाये, चाहे लक्ष्मी पर वज्रपात हो, चाहे शर्म नष्ट हो जाये परन्तु उस हृदयवासिनी से एक क्षणमात्र भी पृथक् नहीं होऊँ। गुणों के समूह से युक्त और यश तथा जप का धाम यशोमति नामक निजपुत्र को राज्य सिंहासन पर स्थापित करके, उसे ही राज्यभार समर्पित करके, पश्चात् इष्ट प्राप्ति के लिये अमृतरति के घर जाकर उस प्रियतमासहित विलास करूँगा और उसके साथ ही इच्छित भोजन भी करूँगा।

उस सुकोमल मनोहरमुखी प्रियासहित निर्जन वन में वास भी उत्तम है, समस्त सुखों का कारण और लक्ष्मी का निवास है, परन्तु प्रियतमा बिना स्वर्ग का वास भी अच्छा नहीं – इत्यादि अनेक विचार करने लगा।

महाराज मारिदत्त! जिस समय यशोधर महाराज ऐसा विचार कर रहे थे, उस समय सन्ध्या काल हो गया था, उस समय महाराज यशोधर के हृदय में निज प्रिया से मिलने की अत्यन्त लालसा उत्पन्न हुई, इसलिए उन्होंने द्वारपाल को आदेश दिया कि—'तू महारानी के महल में जाकर समाचार दे कि महाराज पधार रहे हैं।'

द्वारपाल ने विनयपूर्वक कहा—'महाराज की जैसी आज्ञा। मैं अभी जाकर समाचार देता हूँ।'

ऐसा कहकर द्वारपाल ने महारानी के महल में जाकर महाराज के आगमन सम्बन्धी समाचार दे दिये। वहाँ की सब व्यवस्था ठीक करके वापिस आ गया।

द्वारपाल ने आकर कहा—'श्री पृथ्वीनाथ! स्वर्गतुल्य महारानी के महल की ओर पधारो।'

इस प्रकार द्वारपाल का निवेदन सुनकर महाराज / मैं तत्काल जाने के लिये तैयार हुआ। उस समय तिमिरनाशक दीपक हाथ में लेकर एक सेवक आगे चल रहा था। इस प्रकार मैं मणिमय शिखरयुक्त अमृतादेवी के महल में पहुँचा। वह महल कहीं-कहीं रत्नजड़ित दीवारों से शोभित था।

राजन! जिस समय यशोधर महाराज / मैं उस अति सुन्दर मन्दिर में / महल में सात प्रकार की भूमि को देखा, उस समय मेरी बुद्धि ऐसी कम्पायमान होने लगी कि मानो नरक में ही प्रवेश किया हो!

पृथ्वीनाथ! उस समय काम के उद्वेग से विषसहित सर्प की भाँति मेरे सर्वांग में कम्प उत्पन्न हुआ और मुझे प्रिया तक पहुँचना कठिन हो गया।

प्रजापालक! तत्पश्चात् मैं द्वारपाल के हाथ का अवलम्बन लेकर रानी के महल में अन्दर पहुँच गया। अन्दर प्रवेश होते ही दैव ने मेरी बुद्धि हरण कर ली। उस समय निज प्रिया के मुख से सुगन्धित स्वादयुक्त वचनालाप सुनकर मैंने अपने कान और नाक को आनन्दित किया। उसके अति उत्तम रूप का अवलोकन

करके नेत्र को तृप्त किया। उस चन्द्रवदनी के अधरामृत के स्वाद से जीभ को सन्तोषित किया और सुकोमल शरीर के स्पर्श से सर्व अंग सुखपूर्ण किये।

राजन! उस समय का अवलोकन, संभाषण, दान, आलिंगन, विश्वास, प्रिया का मिलाप और रतिक्रीड़ा, अमृतादेवी के संसर्ग से जो मुझे प्राप्त हुए, वे दूसरे किसी को प्राप्त नहीं हुए होंगे।

न्यायमूर्ति समस्त क्रीड़ा से निश्चिन्त होकर मैं शयनस्थ हुआ। मैं आँख बन्द करके उस कमलदनेत्रा, चन्द्रवदनी, गजगामिनी प्रिया का स्मरण कर रहा था, इतने में वह परपुरुष-आसक्त मेरे बाहुपाश में से निकलकर धीमे-धीमे गमन करने लगी। तत्काल मैं भी उठकर देखने लगा कि इतनी अर्धरात्रि में यह कहाँ जाती है? ऐसा विचार करके हाथ में तलवार लेकर मैं गुप्त रीति से उसके पीछे जाकर देखता हूँ कि वह कूबड़े (कुरूपवान) के सामने हाथ जोड़कर खड़ी है।

पृथ्वीनाथ! वह कूबड़ा, पुरुषार्थ में अनुद्यमी, सर्वजन निन्द्य, बड़े दाँतवाला, बहुत बड़े और विषम होंठ, खुरदरे और कठोर हाथ-पैर, सूक्ष्म और कठोर हृदय, रूक्ष बालों से भयानक, दूसरों के जूतों का रक्षण करनेवाला, हाथी-घोड़े के बचे हुए अन्न से पेट भरता था। ऐसे महा भयानक कूबड़े ने जैसे ही अमृतादेवी को देखा, तुरन्त ही वक्रदृष्टि से बोलने लगा।

कूबड़ा—'सद्भावरहित दासी! तूने इतनी देर क्यों लगायी? प्रतिदिन की भाँति शीघ्र क्यों नहीं आयी?' इत्यादि वक्-वक् करते हुए चाबुक हाथ में लेकर अमृतादेवी को मारने लगा। तत्पश्चात् केश पकड़कर जमीन पर पछाड़कर लात मारने लगा।

उस समय कुबड़े के चरणों में नमस्कार करती हुई अमृतादेवी नम्र भाव से कहने लगी—

अमृतादेवी—'स्वामी! आज घर के कार्य से अवकाश न मिलने के कारण थोड़ा विलम्ब हो गया है। नाथ! आप कामदेव समान मेरे हृदय में निवास करते हो, इस कारण आपके नाराज होने से मेरे छत्र, चँवर, आसन, महल, हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादा, वस्त्र, आभूषण और समुद्रान्त पृथ्वी का राज्य-यह सब ही व्यर्थ है।

प्राण बल्लभ! आपके बिना कुमकुम का विलेपन, रत्न-स्वर्णजड़ित आभूषण, उत्तम बहुमूल्य वस्त्र और मुक्ताहार-यह सब ही अग्नि ज्वाला समान सर्वांग को दाहकारक है। हे विधाता! तूने इन्हें उत्तम कुल में उत्पन्न करके मेरा पति क्यों नहीं बनाया? और ऐसा ही किया तो मुझे जीवित क्यों रखा?

प्रियवर! आपके बिना जो दिन व्यतीत होता है, वह ऐसा लगता है कि पूर्व संचित पापकर्म का फल आज भोगती हूँ।

यदि कदाचित् यशोधर महाराज यमपुर पहुँच जाये तो मैं नृत्य करूँगी और चैत्र माह में नैवेद्य से कात्यायिनी देवी की पूजा करूँगी।'

राजन! वह अमृतादेवी उपरोक्त प्रकार से नम्र वचनों द्वारा अपने प्रेमी कूबड़ा को सन्तोषित करके गाढ़ आलिंगन करने लगी। उस समय दोनों प्रेमी प्रेम सागर में निमग्न होकर भय और लज्जा को एकदम भूल गये।

नृपवर! उस समय उन दोनों की अवस्था देखने से मेरे / यशोधर के क्रोध का पार नहीं रहा। मैं तत्काल तलवार बाहर निकालकर दोनों को मारने हेतु उद्यत हुआ ही था कि उसी समय

मन में विचार आया कि जिस तलवार से वीरों का संहार किया, जिस तलवार से राजाओं का विनाश किया, जिस तलवार से महा भयंकर सिंहों का नाश किया, उसी तलवार से इन दोनों को किस प्रकार मारूँ? जिस तलवार से योद्धाओं को मारा है, उस तलवार से ऐसे रंक को किस प्रकार मारूँ? इत्यादि प्रकार से चिन्तवन करके मैंने क्षमारूप जल से क्रोधाग्नि को शान्त किया। तत्पश्चात् तलवार को म्यान में रखकर, जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार गुप्त रीति से जाकर शैय्या पर सोते-सोते हृदयवासिनी दुष्टा के चरित्र का स्मरण करने लगा। कि—हा! धिक्कार है तुम्हारी बुद्धि को! तुम्हें जरा भी विचार नहीं आया कि कहाँ तो मेरा उच्च क्षत्रिय कुल और कहाँ तो उसका रंक कुल? कहाँ तो समुद्रान्त पृथ्वी के अधिपति की प्राणबल्लभ और कहाँ तो यह हाथी-घोड़ों की बची हुई झूठन में आजीविका चलाकर पेट भरनेवाला दरिद्री कूबड़ा।

हा! धिक्कार! तूने यह भी विचार नहीं किया कि मेरा पति राजाधिराज है और एक नवयौवन पुत्र विद्यमान होने पर भी ऐसे नीच, दरिद्री, उच्छिष्ठ भोजी, मलिन गात्र, कूबड़ा के साथ किस प्रकार रमण करती हूँ?

हा! अमृता! तेरी बुद्धि एक साथ ही नष्ट हो गयी। तुझे यह नीच कृत्य करते हुए किंचित् भी लज्जा नहीं आयी। जिस वृक्ष की शाखा पर हंस बैठता है, उसी वृक्ष की शाखा पर बगुला भी बैठता है!

राजन! उपरोक्त विचार करते-करते यशोधर महाराज गोपवती, वीरवती और रक्ता, इन दुराचारी स्त्रियों के चरित्र का स्मरण करने लगे।

गोपवती का चरित्र

किसी एक गाँव में महाव्यभिचारिणी कुलटा गोपवती नामक स्त्री अपने पति के साथ रहती थी। एक बार उसके पति ने उसके कुचारित्र से व्याकुल होकर अन्य स्त्री के साथ विवाह कर लिया। यह समाचार प्राप्त होते ही वह दुष्टा अत्यन्त क्रोधित हुई। एक दिन नवविवाहिता स्त्री सहित उसका पति सो रहा था, यह देखकर विषधारिणी सर्पिणी की भाँति हुँकार करती हुई तीक्ष्ण तलवार से अपनी सौत का सिर काटकर किसी गुप्त जगह पर रख दिया।

जब उसका पति उस स्त्री के अग्नि संस्कार से निश्चिन्त होकर भोजन के लिये गोपवती के घर में गया और वहाँ मृत्यु प्राप्त स्त्री के शोक में उदास मुख भोजन में अरुचि करने लगा, तब पति की यह दशा देखकर गोपवती ने 'सौत' का मस्तक लाकर पति के भोजन की थाली में रखा और कहने लगी कि अब इसे खा। ऐसा देखकर डरकर पति भागने लगा परन्तु उस कुलटा ने उसे भागने नहीं दिया और उसे भी पकड़कर छुरी से गला काटकर मार दिया और निश्चिन्त होकर मनमाना व्यभिचार सेवन करने लगी। इत्यादि।

वीरवती का चारित्र

सुदत्त नामक एक पुरुष ने वीरवती स्त्री के साथ विवाह करने के थोड़े दिन पश्चात्, उसे लेने के लिये अपने सुसराल गया। वीरवती अंगारक नामक एक चोर में आसक्त थी, परन्तु सुदत्त के वहाँ पहुँच जाने से अंगारक के निकट जाने का समय वीरवती को प्राप्त नहीं होता था। इस कारण रात-दिन वह तड़पती रहती थी। एक दिन किसी कारण से श्मशान में अंगारक को

शूली की सजा दी गयी, उसके समाचार यद्यपि वीरवती को प्रापत हो गये थे, तथापि दिन में न जा सकने से, रात्रि होने पर जब उसका पति 'घोड़े बेचकर सो गया', तब आधी रात को अपने प्रेमी से मिलने पहुँची और शूली के नीचे मृत पुरुषों का ढेर करके उस पर खड़ी रहकर चोर का आलिंगन किया। पश्चात् जब अंगारक ने वीरवती के होंठ पर चुम्बन किया, उसी समय अंगारक की मृत्यु हो जाने से उसका मुँह बन्द हो गया।

इस ओर मुर्दों का जो ढेर किया था, वह खिसक जाने से वीरवती का होंठ कटकर अंगारक के मुख में रह गया। पश्चात् वीरवती जिस प्रकार गुप्त रीति से आयी थी, उसी प्रकार मुँह छिपाकर अपने घर में जाकर अपने पति के निकट सो गयी।

तत्पश्चात् उस व्यभिचारिणी दुष्टा ने बुद्धिपूर्वक शोर मचाना शुरु किया कि हाय.. हाय..! मेरे पति ने मेरा होंठ काट लिया। उसकी आवाज सुनकर परिवार के सभी लोग एकत्रित हो गये। जब सबेरा हुआ तब, राजदरबार में जाकर राजा के समक्ष सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने तुरन्त ही सुदत्त को आरोपी जानकर शूली पर चढ़ाने का आदेश दिया।

जब राज कर्मचारी सुदत्त को लेकर चलने लगे, तब एक वीरभट नामक पथिक ने, जो कि वीरवती के दुष्चारित्र का पूर्णत: जानकार था, उसने राजा को समस्त रहस्य कह दिया। कहा कि श्री महाराज! यदि मेरी बात सत्य न लगती हो तो मृतक अंगारक का मुँह देखा जाये, उसमें वीरवती के कटे हुए होंठ का टुकड़ा अवश्य होगा। यह सुनकर जब महाराज की आज्ञानुसार मृतक अंगारक का मुख देखा गया तो उसमें से होंठ का टुकड़ा निकला।

तत्पश्चात् राजा ने वीरवती का चरित्र जानकर सुदत्त को दण्डमुक्त घोषित किया और वीरवती को शूली की सजा सुनायी। उस समय सब लोगों ने कुलटा वीरवती का साहस देखकर अत्यन्त आश्चर्य से कहा कि, देखो! इस पापिनी ने अपना दुष्कर्म छुपाने के लिये बेचारे निरपराध सुदत्त को अपराधी प्रसिद्ध किया।

रक्तारानी की कथा

अयोध्या के राजा देवरति की रानी का नाम रक्ता था। वह बहुत ही सुन्दर थी। राजा, विषय लम्पटी होने से सदा रानी के पास ही बैठा रहता था। राज्यकाज में कुछ भी ध्यान नहीं देता था। धर्म, अर्थ और मोक्ष पुरुषार्थ का परित्यागकर विषय-वासना का दास बने रहने से दुर्गति होती है, देवरति की भी ऐसी ही दशा हुई।

मन्त्रियों को उसकी उदासीनता बहुत ही खराब लगने लगी। उन्होंने राजा से राज्य संभालने की प्रार्थना भी की, परन्तु फल कुछ भी नहीं निकला। इस कारण देवरति के पुत्र जयसेन को राजा नियुक्त करके, देवरति को रानीसहित देश से निष्कासित कर दिया गया।

अरे...रे! इस विषय-वासना को धिक्कार है कि जिससे मान-मर्यादा धूल में मिल जाती है और कष्ट भी सहन करना पड़ता है।

❖ ❖ ❖

राजा देवरति अयोध्या से निकलकर एक भयानक जंगल में आ गया। वहाँ रानी को तीव्र भूख लगी, इसलिए रानी को यमुना के किनारे एक वृक्ष के नीचे बिठाकर राजा भोजन के लिये

समीप के गाँव में गया। यमुना के किनारे एक सुन्दर बगीचा था। उसमें कोई अपंग मधुर आवाज में गीत गा रहा था। उसके गाने की मधुर आवाज रक्तारानी के कान में पड़ी। रानी गानेवाले पर मोहित हो गई और वह लाज-शर्म छोड़कर अपंग के पास गई। उसके समक्ष अपनी काम वासना प्रगट की। यद्यपि वह अपंग कोई सुन्दर नहीं था, तथापि रानी उस पर मुग्ध हो गई। सत्य ही है, काम जात-पात नहीं देखता।

रानी की पाप वासना सुनकर अपंग घबरा गया और बोला हे देवी! मैं एक भिखारी हूँ और आप राज रानी हो। यदि राजा अपने को एकसाथ देखेगा तो जीवित नहीं रहने देगा। आपके तेजस्वी और शूरवीर पति की याद आते ही मेरा शरीर काँप उठता है; अतः मुझे क्षमा करो।

रानी ने उसे धैर्य बँधाकर कहा कि तुम चिन्ता मत करो, मैं अभी राजा को मार दूँगी।

अहो! कुलटा क्या-क्या अनर्थ नहीं कर सकती?

उसी समय राजा भोजन लेकर आ गया। उसे देखते ही रानी माया फैलाकर रोने लगी। राजा, रानी को रोते हुए देखकर, भोजन को एक तरफ रखकर रानी के पास गया और बोला कि हे प्रिय! तुम क्यों रोती हो? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है? अकस्मात् तुम्हारे रुदन से मेरा धीरज छूटा जा रहा है। अपने रोने का कारण शीघ्र ही मुझको बताओ।

रानी एक लम्बी श्वांस लेकर बोली - प्राणनाथ! आपके रहते कौन मुझे कष्ट दे सकता है? परन्तु मुझे इस बात का बड़ा दुःख होता है कि आज आपका जन्मदिन है और मेरे पास एक

फूटी कोड़ी भी नहीं है। मैं आज आपके जन्म का उत्सव किससे मनाऊँ ?

रानी की प्रेम भरी बात सुनकर राजा का हृदय भी भर आया और आँख में से आँसू टपकने लगे। राजा ने रानी से प्यार भरे शब्दों में कहा कि प्रिये! उसके लिये क्या चिन्ता है ? कभी वह दिन भी आ जायेगा, जब तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। तुम्हारे जैसी भाग्यशालिनी जिसकी प्रिया हो, जिसके लिये मैंने राज-पाट को तुच्छ समझा, उसे ऐसी छोटी-छोटी बातों से क्या दु:खी होना चाहिए ?

राजा को यह स्वप्न में भी पता नहीं था कि यह कुलटा निष्कपट प्रेम का बदला प्राण लेकर लेगी।

देव की गति विचित्र है। राजा के ऐसे सच्चे प्रेम का उस पापिनी के पत्थर हृदय पर जरा भी असर नहीं हुआ। रानी ऊपर से प्रेम दर्शाते हुए बोली नाथ! जो बात नहीं हो सकती, उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है, तो भी मैं अपने चित्त की शान्ति के लिये इस पवित्र पुष्पमाला से आपके जन्मदिन का उत्सव मनाऊँगी।

ऐसा कहकर रानी ने फूल गूँथने की डोरी से राजा को बाँध दिया। राजा समझा कि रानी जन्मदिन की विधि पूर्ण कर रही है; अत: राजा एक भी शब्द नहीं बोला। राजा को अत्यन्त मजबूती से बाँधकर रानी ने ईशारे से अपंग को बुलाया और उसकी सहायता से यमुना के किनारे ले जाकर राजा को नदी में फेंक दिया और कुलटा रानी उस अपंग के साथ वह अपनी कुत्सित मनोवृत्ति पूर्ण करने लगी। नीचता और कुलटापन की हद हो गयी।

❖ ❖ ❖

जब पुण्य का उदय होता है तो मनुष्य भयंकर दुःखों से भी बच जाता है। राजा देवरति के भी कोई ऐसा पुण्य-उदय हुआ कि जिससे वह नदी से बच गया। वह नदी से निकलकर मङ्गलपुर शहर के समीप पहुँचा। कितने ही दिनों से चलते रहने के कारण वह थक गया था; इस कारण अपनी थकावट दूर करने के लिए एक छायादार वृक्ष के नीचे सो गया। मानो कि जैनधर्म की छत्रछाया में नींद ले रहा हो।

मङ्गलपुर का राजा श्रीवर्धन निःसन्तान था। उसकी उस समय मृत्यु हो गई, इसलिए मन्त्रियों ने विचार-विमर्श करके एक हाथी को जल से भरा हुआ कलश देकर छोड़ा कि यह हाथी जिसका अभिषेक करेगा, वह राजा बनेगा। कर्म की लीला अपरम्पार है। कर्म, राजा को रंक और भिखारी को राजा बना देता है। जब देवरति का समय प्रतिकूल था, तब उसे रास्ते का भिखारी बना दिया और पुण्योदय होने पर उसे राजगद्दी पर बैठा दिया।

देवरति, वृक्ष के नीचे सो रहा था, उसी समय हाथी ने आकर उसका अभिषेक किया। उसे धूमधामपूर्वक शहर में लाकर राज सिंहासन पर बिठाया गया।

पुण्य का उदय होने पर आपत्ति भी सुखरूप हो जाती है; इस कारण सुख की इच्छा करनेवालों को सदा धर्म पर विश्वास रखकर पूजा, दान आदि शुभकार्य करना चाहिए।

देवरति फिर से राजा हो गया, परन्तु उसकी दशा पहले जैसी नहीं रही। वह स्वयं राजकाज सँभालने लगा। जिन बुराइयों के कारण राज्य से भ्रष्ट हुआ था, वह उनको अपने पास फटकने भी

नहीं देता था। स्त्री नाम से भी उसको घृणा थी। वह कुल कलंकी का बदला लेकर सभी स्त्रियों को कुल कलंकी कहने लगा। इसमें उसका दोष भी क्या था? दूध से जला हुआ मनुष्य छाछ को भी फूँक-फूँककर पीता है। वह दान देता था लेकिन किसी भी लूले-लँगड़े को एक दाना भी देना पाप समझता था। वह एक अपंग के पाप का फल है।

❖ ❖ ❖

इधर रक्ता रानी ने कितने ही दिन अपंग के साथ रहकर मजा किया। फिर अपंग को एक टोकरी में डालकर देश-विदेश घूमने लगी। वह जहाँ भी जाती, अपने को एक महासती प्रसिद्ध करती और कहती कि माता-पिता ने मुझे जिसके हाथ सौंपा, वही मेरा प्राणनाथ है। इस ठगाई में लोग बहुत धन देते थे। इस प्रकार भिक्षावृत्ति करते-करते वह मङ्गलपुर पहुँच गई। वहाँ भी लोगों को उसके सतीत्व पर अत्यन्त श्रद्धा हो गई। सत्य है, स्त्रियों ने जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवताओं को भी ठग लिया, तब उनके जाल में सामान्य मनुष्य ठगा जाये तो उसमें आश्चर्य ही क्या है!!

एक दिन वे दोनों गाते-गाते राजमहल के सामने आये। द्वारपाल ने राजा से प्रार्थना की कि हे महाराज! एक स्त्री अपने अपंग पति को टोकरे में लेकर खड़ी है। वे दोनों बहुत ही सुन्दर गीत गाते हैं और महाराज के दर्शन करना चाहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो उनको अन्दर आने दें। सभासदों ने भी उनको देखने की इच्छा जाहिर की।

राजा ने परदा आड़े लगाकर उन दोनों को अन्दर आने की

आज्ञा दी। तथाकथित सती सिर के ऊपर टोकरा लेकर अन्दर आई और उसने गीत गाया, जिससे सभी मुग्ध हो गये।

राजा ने आवाज सुनकर उस सती की सत्यता को पहचान लिया। परदा दूर करके कहा – अहा! यह तो महासती हैं, इनका अतीत मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तत्पश्चात राजा ने अपनी हकीकत (आत्मकथा) सभा को सुनाई। लोग इस हकीकत को सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और रक्ता को शहर से बाहर निकाल दिया गया।

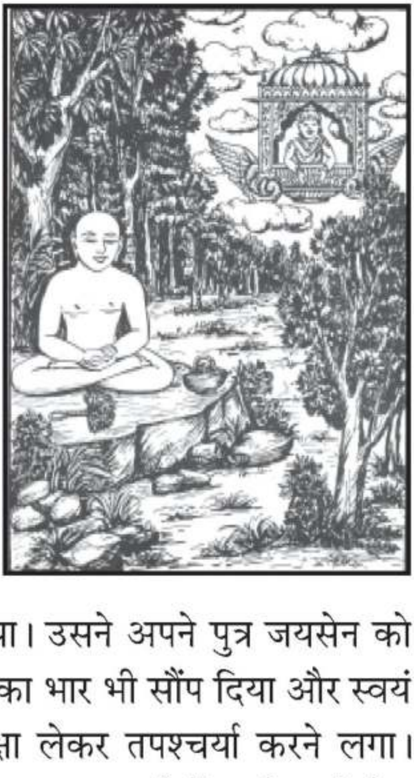

स्त्रियों का चरित्र देखकर राजा देवरति को वैराग्य हो गया। उसने अपने पुत्र जयसेन को अयोध्या से बुलाकर इस राज्य का भार भी सौंप दिया और स्वयं यमधर आचार्य के समीप दीक्षा लेकर तपश्चर्या करने लगा। अन्त में समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

रक्ता रानी जैसी रानी का घृणित चरित्र देखकर, सांसारिक सुख को क्षणिक समझकर, जिस देवरति राजा ने मुनिपद ग्रहण किया, वे सर्वगुण सम्पन्न मुनिराज मुझे मोक्ष प्रदान करें।

इस प्रकार स्त्रियों का चरित्र अत्यन्त ही अगाध है।

❖ ❖ ❖

मारीदत्त महाराज से क्षुल्लक महाराज पुनः कहने लगे— 'राजन! इस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्रियों के दुष्चरित्र का चिन्तवन करते हुए जब मैं—यशोधर सो रहा था, तब ही पसीने से भींगे हुए शरीर से वह अमृतादेवी अपने प्रेमी कूबड़ा से रमण करके मलिन मुख लेकर मेरे बाहुपाश में आकर सो गयी, जो मुझे विषपूर्ण सर्पिणी समान लगी अथवा मृतक डाकिनी ही मेरे निकट आयी, ऐसा मुझे लगा।

नृपवर! उस समय यद्यपि वह मेरे बाजु में ही सो रही थी, तथापि मैं मन में चिन्तवन करने लगा कि—'जैसे खाज खुजलाने में सुख होने के बाद वह दुःखी करता है, उसी प्रकार विषय सेवन में सुख होता है, वह वस्तुतः दुःख ही है। जो आभरणों का भार है, सर्व अंगों का दमन करता है और नृत्य आहार का दमन करता है। जो शरीर की लावण्यता है, वह अशुचि रस को उत्पन्न करनेवाली है। जो स्नेह का बन्धन है, वह दुःख का कारण है। जो स्त्री के रूपादिक का अवलोकन है, वह काम ज्वर को बढ़ानेवाला है। प्रिया का आलिंगन है, वह शरीर को पीड़ा करनेवाला है।

जो स्त्री के निरन्तर अनुबन्ध में राग है, वह दुःखपूरित कारागृह / जेल है और जो प्रेम है, वह ईर्ष्या की अग्नि है, उसमें जलता हुआ पुरुष आकुलित होता है और स्त्री -सेवनादि क्रिया से उत्पन्न होनेवाला काम है, वह स्त्रियों के हाथ का तीक्ष्ण हथियार है। उसके द्वारा ही दुष्टा व्यभिचारिणी पर पुरुषरता वनिता अपने पति का घात करके पश्चात् स्वयं भी मरण को प्राप्त होकर संसारवन में भ्रमण करती है।

जीवों को जो बाधाकारक विस्तीर्ण और उत्कृष्ट दुष्कृत्य का घर तथा भारी दु:ख है, उस इन्द्रियजनित सुख का पण्डित लोग किस प्रकार सेवन करें? कभी भी नहीं करते।

यह जो मनुष्य का शरीर है, वह रोगों का स्थान है क्योंकि यह शरीर धोने पर भी पवित्र नहीं होता, सुगन्धित करने पर भी सौरभित नहीं होता परन्तु शरीर के संसर्ग से उत्पन्न सुगन्धित पदार्थ भी दुर्गन्धमय हो जाते हैं।

यह क्षणभंगुर शरीर पुष्ट करने पर भी बलवान नहीं होता, प्रसन्न करने पर भी अपना नहीं होता, दीक्षा से दीक्षित करने पर भी क्षुधा के लिये अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं, अनेक उत्तम शिक्षा देने पर भी अवगुणों में रमण करने लगता है, शान्त करने पर भी दु:खी रहता है, धर्म शिक्षा देने पर भी धर्म से विमुख रहता है।

यह नाशवान शरीर तेलादिक का मर्दन करने पर भी रूक्ष रहता है, दवा का सेवन करने पर भी प्रचुर रोगों से घिर जाता है, अल्पाहार करने पर भी अजीर्ण से व्याप्त हो जाता है, शीतल पदार्थों का सेवन करने पर भी पित्तादि से व्याकुल होता है, वातनाशक तेलादि का मर्दन करने पर भी वात व्याधि से पीड़ित रहता है, अनेक प्रकार से प्रक्षालन करने पर भी कोढ़ से गलता रहता है।

अधिक कहाँ तक कहना? यह शरीर अनेक प्रकार से रक्षित करने पर भी यमराज के मुख का ग्रास बन जाता है। यद्यपि यह शरीर उपरोक्त प्रकार से विपरीत प्रवर्तमान होता है, तथापि रागी पुरुष इस शरीर के लिये अनेक प्रकार के पाप कर्मों में तत्पर रहते हैं।

इस प्रकार मेरे जैसा मूर्ख मनुष्य अपनी स्त्री के वश होकर पापकर्म करता और व्यापारादि में संलग्न होकर नरक में जाता है।

इस शरीर की यह अवस्था है और जिसके लिये अनेक पापकर्म करता हूँ, उस प्रियतमा की भी यह दशा है तो अब मुझे भी समस्त कार्यों का त्याग कर देना चाहिए। इसलिए अब प्रात:काल होते ही नगर, परिवार और राज्यलक्ष्मी का त्याग करके गहन वन में और सघन पर्वतों की गुफाओं का आश्रय करूँगा तथा देवेन्द्र, धरणेन्द्र, और नागेन्द्रों द्वारा पूजित मुनिपद धारण कर महातप का आचरण करूँगा।'

धरानाथ! इस प्रकार चिन्तवन करते-करते प्रात: काल हो गया, तब प्रात: सम्बन्धी वाजन्त्रों की आवाज सुनकर शैय्या का परित्यागकर खड़ा हुआ। पश्चात् स्नानादि नित्य क्रियायें निपटाकर मैंने विचार किया कि जब कि अब मुझे इस शरीर से ही ममत्व नहीं है तो फिर इन रत्नजड़ित आभूषण और बहुमूल्य वस्त्रों से क्या प्रयोजन है?

इस शरीर संस्कार से काम की वृद्धि होती है, जिस कामदेव का फल मुझे प्रत्यक्ष प्राप्त हो गया है। इसलिए इसे धारण करना सर्वथा अनुचित है। उसी समय दूसरा यह भी विचार आया कि यदि मैं अभी ही सर्व आभूषणों का परित्याग करूँगा तो सम्पूर्ण अन्त:पुर में यह वार्ता विस्तरित हो जायेगी कि महाराज ने अवश्य कुछ अमनोज्ञ देखा है, इसलिए उदासचित्त होकर आभूषणों का त्याग किया है तथा मेरी सभा की पण्डित मण्डली समस्त अभिप्रायों की ज्ञाता है, अत: उनसे यह बात किसी भी प्रकार से गुप्त नहीं रह सकेगी।

तदुपरान्त यह बात अनेकरूप धारण करके समस्त नगर में फैल जायेगी तो प्रजाजनों के चित्त में अनेक प्रकार के विकल्प उत्पन्न होने लगेंगे; उनमें भी यदि अमृतादेवी को ज्ञात होगा तो स्वयं तो मरेगी ही परन्तु मुझे मारने का षड्यन्त्र भी करेगी। इस प्रकार अनेक विचार करके मैंने पूर्ववत् सभी वस्त्राभूषण धारण किये। वे मुझे ऐसे लगते थे मानो कि सर्व दुःखों का समूह मेरे सर्वांग में चिपट रहा हो।

राजन! सर्व शुभाशुभ, जीवन, मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख और शत्रुकृत घात के ज्ञाता, विपुल बुद्धि के धारक तथा समस्त ऋद्धि के समूह जिसे हस्तगत है, ऐसे योगीश्वर भी स्त्रियों के चरित्र को नहीं जान सकते तो फिर अन्य पुरुषों की तो बात ही क्या?

हाथी, बाँधा जा सकता है; सिंह, रोका जा सकता है और संग्राम में प्रबल शत्रु भी जीता जा सकता है, परन्तु पर पुरुषासक्त स्त्री के चित्त को कोई भी बाँध नहीं सकता।

नृपवर! इस प्रकार के विचार करता हुआ मैं उदासचित्त सभा में गया और वहाँ रत्नजड़ित सिंहासन पर उपस्थित हुआ। उस समय की समस्त सभा यद्यपि सुखकर थी, तथापि मुझे—यशोधर महाराज को दुःखकर लगती थी।

राजन! उस समय विद्वान पण्डितों ने सरल वार्ता करना शुरु किया, जिससे मेरे हृदय में हर्ष उत्पन्न होने लगा। उस समय सभा मण्डप में सुकवि के काव्य की भाँति मेरी माता चन्द्रमती का शुभागमन हुआ। उस समय मैंने तपश्चरण का उपाय मन में विचारकर मिथ्या स्वप्न का वृत्तान्त माता को कहा।

मैंने कहा—'हे माता! आज रात्रि को मैंने एक भयानक स्वप्न देखा है। मैंने देखा एक विकराल पुरुष हाथ में शस्त्र लेकर मेरे सन्मुख खड़ा था और मुझे कह रहा था कि तू जिनराज की दीक्षा धारण कर, नहीं तो मैं तुझे यमपुर पहुँचा दूँगा। ऐसा कहकर वह तुरन्त ही अदृश्य हो गया। माता! वह विकराल मूर्ति अभी भी मेरे नेत्रों के समक्ष तैर रही है; इसलिए मुझे कुछ नहीं रुचता। किसकी पृथ्वी और किसका राज्य? किसकी स्त्री और किसका पुत्र? मुझे किसी से कुछ प्रयोजन नहीं है। अब तो केवल आत्मकल्याण ही इष्ट है। इसलिए मैं समस्त परिग्रह का त्याग करके और दु:सह्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्तकर जिनदीक्षा धारण करके महातप करूँगा।

हे माता! रात्रि को मैंने जो निकृष्ट स्वप्न देखा है, उससे मैंने यह निश्चित किया है कि यशोमति नामक मेरा जो पुत्र है, उसे राज्य के पद पर स्थापित करना योग्य है। माता! दुष्ट स्वप्न की शान्ति के लिये जिनदीक्षा के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है।'

मेरे ऐसे वचन सुनकर मुनि के गुणों का घात करनेवाली और मिथ्यात्व के विष से दूषित मेरी माता कहने लगी—

'पुत्र! चिन्तित मनोरथ और समस्त आज्ञाओं को पूर्ण करनेवाली कुलदेवी-चण्डमारी के निकट समस्त जीवों के युगलों की बलि देने से दु:ख, क्लेश, कलह और दु:स्वप्न आदि समस्त कष्ट शान्त हो जाता है, अत: तुझे भी अवश्य शान्ति होगी; इसलिए हे पुत्र! तू भी कुल देवी की सेवा में तल्लीन होकर शान्ति करने का उपाय कर।'

क्षुल्लक—अहो राजन मारीदत्त! जब मेरी माता ने दयारहित

उपर्युक्त वचन कहे, उस समय करुणा से कम्पित हृदय मैंने (यशोधर राजा ने) इस प्रकार कहा—

'अहो माता! महापाप के कारणरूप प्राणियों का वध करना किस प्रकार उचित है? क्योंकि जीव-हिंसा के समान न तो कोई पाप हुआ है और न होगा। जो दूसरे जीव का अकल्याण-बुरा करके अपनी रक्षा करना चाहता है, वह अग्नि से शीतलता की चाह करता है।

यह तो प्रत्यक्ष है कि जो दूसरे का भला करता है, उसका भला होता है और जो दूसरे का बुरा करता है, उसका बुरा होता है; उसका भला तीन काल में नहीं हो सकता क्योंकि जीव घात में तो प्रत्यक्ष पाप है और पाप का फल दु:ख है; अत: उससे शान्ति कैसे होगी? कभी भी नहीं होगी।

मातुश्री! जो जीव का घातक है, वह उस जीव से अनेक प्रकार से घाता जाता है इस प्रकार पापरूपी नौका में बैठकर विघ्नरूपी नदी किस प्रकार पार की जा सकती है?

इसके अतिरिक्त एक बात यह भी विचारणीय है कि यदि जीवघात में ही धर्म हो और उससे ही विघ्नों की शान्ति होती हो तो पाप किस कार्य में होगा?

इस बात को सभी धर्मवाले मानते हैं और यह वाक्य हमेशा बोला जाता है कि 'अहिंसा परमोधर्म:'। इस वाक्य से विरोधी कोई नहीं है तो फिर 'जीवघात में धर्म होता है' ऐसा कहनेवाला कौन होगा?

माता! पूर्व काल में असंख्य महापुरुष, काल का ग्रास होकर परलोकवासी हो गये हैं, तो क्या उस समय चण्डमारी देवी नहीं

थी अथवा नैवेद्य और पशुओं का समूह नहीं था? अथवा मद्य-माँस का सरस भक्षण नहीं था? या फिर इस विधि का कोई ज्ञाता नहीं था कि जो चण्डमारी देवी को पशु तथा मद्य आदि की बलि देकर, सन्तुष्ट करके मरण से बच जाये?

इससे यह निश्चित होता है कि चण्डमारी देवी में ऐसी शक्ति नहीं है कि किसी जीव को काल से बचा सके और उसे शान्ति प्रदान कर सके।

वास्तविकता तो यह है कि संसार में जितने जीव हैं, वे अपने-अपने कर्मों के आधीन सुख-दुःख का भोग करते हैं। कोई भी किसी का उपकार नहीं करता परन्तु शुभाशुभकर्म ही अपकार और उपकार के कर्ता होते हैं।'

राजन्! इस प्रकार मेरे वचन सुनकर माता कहने लगी—

'प्रिय पुत्र! समस्त जगत में धर्मरूप वृक्ष का मूल वेद है; इसलिए वेद द्वारा जो मार्ग सम्पादित है, राजाओं को उसी का पथिक बनना उचित है और वेद में देवताओं के लिये पशुओं का घात करना पूजनीय और प्रशंसनीय कहा गया है, इसलिए जीववध, पुण्य माना गया है और उसे करनेवाले महापुरुष स्वर्ग के अधिकारी माने गये हैं।

जो पशुओं का घात करता है और माँस का भक्षण करता है, वह स्वर्ग और मोक्ष की ओर गमन करता है। जैसा ब्रह्मा ने वर्णन किया है, उसी प्रकार विपुलमति के धारक सुगुरु भैरवाचार्य प्रतिपादन करते हैं।

प्रिय पुत्र! उपर्युक्त कथनानुसार कुल देवी चण्डमारी के लिये पशुओं का बलिदान देकर शान्ति की स्थापना कर। उस

महादेवी के समक्ष जीवों का हवन करने से तेरे समस्त शत्रुगण त्रासयुक्त होते हुए तेरे चरणों में नमस्कार करेंगे और तेरा यश समस्त दिशाओं में व्याप्त हो जायेगा।'

राजन्! मेरी – यशोधर की – माता उपरोक्त उपदेश देकर जब मौन हो गयी, तब मैंने फिर से कहा—

'प्रिय माता! तूने जो कुछ भी कहा, वह सब सर्वथा अनुचित और मिथ्या है, क्योंकि जो हिंसामार्ग के प्ररूपक, हिंसा के प्रणेता और हिंसा के उपदेश के श्रोता हैं, वे महाघोरतर पाप के करनेवाले महापापी हैं; और जो पुरुष तीक्ष्ण खड्ग की धार से पशुओं का घात करता है, वह निकृष्ट और पापी है।

जो पुरुष दीन पशुओं को बन्धन में डालकर त्रास देता है, उन्हें मारकर उनके माँस का भक्षण करता है तथा मद्य-पान करके देवता की भक्ति में लीन होकर नृत्य करता है, गीत गाता है और वादित्र बजाता है, वह सातों ही नरक की भूमि में उत्पन्न होकर ताड़ण, मारण, शूलीरोहण आदि असंख्य कष्टों का पात्र बनता है। जब वहाँ से बाहर निकलकर कोई हिंसक तिर्यंच होकर अति रौद्र दुःखरूप कुयोनियों में भ्रमण करके किसी पुण्य के योग से यदि मनुष्य पर्याय धारण करे तो क्षुधावन्त, मूक, पंगु, बहरा, अन्धा, निर्बल, दीन, दरिद्री, दुःख से पीड़ित, नपुंसक, शक्तिहीन, तेजरहित, अविवेकी, गौ आदि पशुओं का घातक, चाण्डाल, नीच कर्म से आजीविका करनेवाला, हिंसक और क्रूर परिणामी होता है।

तत्पश्चात् मरकर सिंह, शार्दूल, मार्जर, आदि पशु तथा सर्प, गृद्ध, आदि पक्षियों की योनियों में भ्रमण करके महावेदना भोगता

है। पशुओं का वध करने से और पर की हिंसा से ही यदि धर्म होता हो तो बहुगुणी और मुनियों को पापी जीव किसलिए नमस्कार करते हैं ?

मन्त्र संस्कारपूर्वक तीक्ष्ण खड्ग की धार से पशुओं का वध करो, दिशाओं में बलि चढ़ाकर अग्नि में हवन करके मुण्डन कराकर कसायले लाल वस्त्र धारण करो, अनेक नदियों में-सरोवरों में स्नान करके शरीर पर राख लगाओ, बड़ी जटा धारण करो, इन्द्रियों का दमन करके पंचाग्नि तप तपो, ध्रूमपान करो, नग्न मुद्रा धारण करो, वन-पर्वत और गुफाओं में वास करो, आतापन-चन्द्रायण और शुद्धोदन आदि व्रतों का चिरकाल के लिये पालन करो, इत्यादि दूसरे अनेक दुष्कर तपों आचरण करो परन्तु जीव दया के बिना सब निष्फल ही नहीं, अपितु उनके धारक, घोर वेदनायुक्त नरकों के कष्टों को सहन करके अनन्त काल तक भ्रमण करते हैं।

करोड़ों शास्त्रों का सार एक ही है कि जो पाप है, वह हिंसा में है और जो धर्म है, वह जीवदया में है।

जो जीव, जीवों की हिंसा करता है, वह अनेक जन्मों में अनेक रोगों से ग्रसित होता हुआ अत्यधिक भार को सहन करनेवाला होता है। जो परजीवों को त्रास देता है, वह अनेक भवों में अनेक दु:खों का भोक्ता होता है।

हे माता! मैं भी अमर तो नहीं, तो फिर इस शरीर के लिये परजीवों का घात किस प्रकार किया जा सकता है?'—ऐसा कहकर तीक्ष्ण खड्ग म्यान में से निकालकर निज मस्तक काटने के लिये उद्यत हुआ कि तुरन्त ही मेरी माता के हाहाकर करने से

निकट बैठे हुए नर रत्नों ने मेरी तलवार पकड़ ली।

तत्पश्चात् वृद्ध माता ने मेरे पैर में गिरकर कहा—'हे पुत्ररत्न! मैंने वास्तव में असत्य कहा है परन्तु जीव चेतनतत्त्व गुण विशिष्ट है और शरीर अचेतन है। इस कारण शरीर का घात करने से पौद्गलिक शरीर को ऐसा पता नहीं पड़ता कि मुझे काटा जा रहा है अथवा मेरे शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा होती है। तदुपरान्त शरीर का नाश होने से नित्य आत्मा का नाश नहीं होता।

इसलिए हे पुत्र! अपनी कुल परम्परा से चला आया हुआ जो मार्ग है, उसे स्वीकार करना ही सर्वथा उचित है।'

पैरों में गिरी हुई माता ने ऐसा कहा तब मैंने-यशोधर महाराज ने कहा कि—'हे माता! यद्यपि इस कार्य में अधर्म ही है, तथापि तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा, तत्पश्चात् तपश्चरण धारण करूँगा।' यह सुनकर मेरी माता सहर्ष खड़ी हो गयी।

तत्पश्चात् लेपकार को बुलाकर आटे का मुर्गा लाने का आदेश दिया। मेरी माता ने जब हास्यपूर्वक लेपकार से आटे का मुर्गा मँगाया कि तुरन्त ही वह उत्कृष्ट वर्ण का धारक मुर्गा ले आया। उस मुर्गे के रंग-रूप को देखकर ऐसा ही लगता था कि यह आटे का नहीं परन्तु सचमुच ही जीवित मुर्गा है और अभी चलने लगेगा।

महाराज! जब मेरी-यशोधर महाराज की-दृष्टि उस मुर्गे पर पड़ी तो तुरन्त ही मेरी माता के आदेश से ढोल, नगाड़े, मृदंग, शंख, बाँसुरी ओर झांझर आदि वादित्रों की आवाज से आकाश गुंजायमान हो गया।

राजन मारिदत्त! उस समय मेरी माता ने कहा कि—'प्रिय

पुत्र! अब विलम्ब का समय नहीं है। अब तुरन्त ही देवी के लिये बलि चढ़ाना चाहिए।' इस प्रकार माता की आज्ञानुसार उठकर समस्त मण्डली तथा पूजा करनेवाले ब्राह्मणों के समूह के साथ हम महोत्सवपूर्वक कुल देवी के मन्दिर की ओर रवाना हुए। वहाँ हम दोनों माता-पुत्र ने देवी की प्रदक्षिणा करके सामग्री से देवी का पूजन किया; तत्पश्चात् देवी के समक्ष तीक्ष्ण छुरी से मुर्गे का घात करके उसमें से प्रवाहित लाल रंग के पानी में रुधिर की कल्पना करके देवी के अंगों का सिंचन किया और उस आटे से बने हुए शरीर में माँस की कल्पना करके देवी के सन्मुख चढ़ा दिया। तत्पश्चात् हम दोनों माता-पुत्र ने देवी से प्रार्थना की कि—

'हे माता! यह अपूर्व कार्य पूर्ण हो।' इस प्रकार तीन बार कहकर फिर घी, मद्य आदि मिश्रित उस आटे के मुर्गे में माँस की कल्पना करके देवी का प्रसाद गिनकर सबको बाँट दिया और सबने खाया।

आहा! उस संकल्पी हिंसा और कल्पनामात्र माँस भक्षण से जो पाप का बन्ध होगा, वह वचन अगोचर है।

तत्पश्चात् देवी को नमस्कार करके मैंने कहा कि—'हे माता! तुम्हें देखकर सन्तोषी मनुष्य सन्ताप से मुक्त हो जाता है। हे देवी! तेरी कृपा से मुझे जंघाबल, बाहुबल, और अचल जीवितव्य प्राप्त हो। हे सुरेश्वरी! भयंकर रण, अतिकष्ट और प्रियजन वियोग में मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार प्रार्थना करते हुए देवी के शरण को प्राप्त हुआ, परन्तु निकट आयी हुई मृत्यु को किंचित् भी जान नहीं सका।

तत्पश्चात् वापिस महल में आकर अपने पुत्र का स्वर्ण कलशों से अभिषेक कराकर राज्यासन पर स्थापित किया। जिस समय मैं समस्त कार्यों से निश्चिन्त होकर तपोवन जाने के लिये उद्यत हुआ ही था कि इतने में अमृतादेवी ने अपना संकल्प दृढ़ किया अर्थात् वह अपने हृदय में विचार करने लगी कि रात्रि के समय कूबड़ा के साथ जो क्रिया की थी, वह स्वामी को ज्ञात हो गयी है और इसीलिए सामन्त, मन्त्री और समुद्रान्त पृथ्वी का राज्य छोड़कर तपश्चरण की इच्छा करते हैं। मैंने महाराज का भाव उनके शरीर की आकृति से जान लिया है। इस प्रकार चिन्तवन करती हुई अमृतादेवी अपने हृदय में दृढ़ संकल्प करके मेरे निकट आकर कहने लगी—

'स्वामी! आपने जो यह दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प किया है, वह अति उत्तम है परन्तु मेरी एक प्रार्थना है, उसे सहर्ष स्वीकार करने के पश्चात् तपोवन की ओर प्रयाण करें – ऐसी प्रार्थना है।

प्राणेश्वर! आपकी मंगल कामना के लिये समस्त अन्तःपुर और नगर निवासी लोगों को आमन्त्रण दिया है तो आप भी देवी के प्रसाद का भोजन ग्रहण करें। तत्पश्चात् हम दोनों जिनदीक्षा धारण करेंगे, क्योंकि आपके बिना इस जीवितव्य को मैं किस प्रकार रख सकूँगी?

प्राणनाथ! आज का दिन अभी घर में रहें, प्रातः काल होते ही जैसे कामदेव को रति, इन्द्र को शची, नारायण को लक्ष्मी, रामचन्द्र को सीता तथा महामुनि को शुद्ध बुद्धि अनुगामिनी होती है, उसी प्रकार आपके चरणों की दासी आपके पीछे तपोवन में चलेगी।

नाथ! आपके साथ ही मैं तपश्चरण धारण करूँगी। यम-नियम का पालन करूँगी। प्रिय पते! आपके बिना सब लोग मेरी जवानी पर ऊँगली करेंगे कि जिसका पति तो समस्त परिग्रह का त्यागी होकर वनवासी हो गया और यह अभी घर में रहकर सुख का भोग करती है।'

राजन मारिदत्त! भवितव्य अत्यन्त ही बलवान है, मेरे चरणों में पड़ी हुई अमृतादेवी के वचन सुनकर, यद्यपि मेरा मन तो उससे अत्यन्त विरक्त हो गया था, तथापि भवितव्यता अनुसार फिर से उसके प्रेमजाल में फँस गया। नृपवर! उस समय मैं फिर से ज्ञाननेत्र विहीन होकर उस परपुरुषासक्त दुष्टिनी के रात्रिकृत कर्म को स्वप्न सदृश जानने लगा।

तत्पश्चात् चरणों में गिरी हुई अमृता के कोमल हाथ को पकड़कर, उसे खड़े करके कहा कि—'प्रिये! मैं तेरी इच्छा पूर्ण करूँगा।' यह सुनकर वह कपटवेशा प्रफुल्लित होती हुई, हास्यपूर्वक रसोईया को उत्तमोत्तम भोजन तैयार करने की आज्ञा करते हुए कहने लगी कि 'भोजन में क्या विलम्ब है? शीघ्र तैयार करो।'

रसोईदार ने हाथ जोड़कर कहा—'स्वामिनी! भोजन तो तैयार है। बस, महाराज के पधारने की देरी है।'

अमृतादेवी—'प्राणपति! रसोई तैयार है, जीमने के लिये शीघ्र पधारें क्योंकि जब आपका भोजन हो जायेगा, तब दूसरों को भोजन कराया जायेगा।'

महाराज मारिदत्त! इस प्रकार के प्रेमपूर्ण अमृतादेवी के वचन सुनकर, हर्षित होते हुए, कर्मों से प्रेरित मैं अमृता के महल की

ओर गमन करने लगा। वहाँ स्फटिकभूमि में उज्ज्वल आसन पर माता सहित विराजमान हुआ। स्वर्ण के थाल में सरस व्यंजन समूह सुकवि के काव्य की तरह सरस अति मनोज्ञ दिखने लगे तथा भोजन के समय की सभा भी काव्य की भाँति सरस्वती लगती थी।

वह अति कोमल, सरस, निर्मल और श्वेत उत्तम भात का भोजन कृतघ्नी जैसा लगता था। उस समय नये स्वर्णमयी छिलकेसहित और दो भागवाली दाल मेरी थाली में रखी हुई ऐसी लगी कि मानो खण्ड किये हुए यमराज के बाण ही न हों! राजन्! उस रसोईया ने, गरम दूध, घी, और उत्तम दही मेरी थाली में रखा, वे ऐसे लगते थे मानो दुष्ट गृहिणी के संगम में यमपुर का मार्ग ही एकत्रित हुआ है।

तत्पश्चात् मोदक भी दिया गया। वह तीव्र विषयुक्त मोदक, वही अमृतादेवी ने प्रेमपूर्वक दिया। उसने कहा—'प्राणनाथ! यह मोदक मेरी माता ने भेजा था, जो मैंने आपके लिये रखा हुआ था। आज आपको देती हूँ; इसलिए आप सर्व प्रथम इस अमृतमय अति स्वादिष्ट मोदक का स्वाद लीजिये।' तत्पश्चात् अनेक मसालों सहित तीक्ष्ण तलवार जैसी सब्जियाँ भी परोसी गयीं।

नृपवर! यद्यपि मैं दुष्ट पत्नी के चरित्र से विरक्त था, तथापि उसकी प्रेमसहित की मोहनी बातों से मोहित होकर ज्ञानशून्य हो गया। उस समय मुझे कुछ भी विचार नहीं रहा अर्थात् समस्त उत्तम व्यंजनों को छोड़कर सर्व प्रथम मोदक का ही हम दोनों माता–पुत्र ने भक्षण किया।

उस तीव्र विष की वेदना से दोनों का सिर घूमने लगा। जब

मैंने जान लिया कि इसमें हलाहल विष है, तब मेरे मुँह से वैद्य... वैद्य... शीघ्र वैद्य को बुलाओ... इतने ही शब्द निकल सके और मैं तुरन्त ही मूर्च्छित होकर धराशायी हो गया।

उसी समय वह दुष्टा–कपटी मेरी पत्नी अमृता, हा नाथ! हा नाथ! शब्द बोलती हुई दहाड़ मारने लगी। तत्पश्चात् मुझ पर गिरकर अत्यन्त कठोरता से मेरा गला दबाकर मुझे मार दिया।

राजन! पश्चात् उसने विचार किया कि यदि वैद्य आयेगा तो मेरा कपट पकड़ा जायेगा, इसलिए कुछ ऐसा विचार करूँ कि वैद्य आ जाने से भी मेरी मायाचारी का किसी को ज्ञान न हो सके। इस प्रकार विचारकर उसने अपने दाँत से मेरा गला दबाकर मुझे मारा और 'हा नाथ! हा नाथ!' करके लोगों को दिखाने के लिये दहाड़ मारकर रुदन करने लगी। उसकी आवाज से समस्त परिवार और समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो गया।

राजन! जो पुरुष व्यभिचारिणी कुलटा के वचनों का विश्वास करता है, वह मेरी तरह नष्ट हो जाता है।

उस समय सज्जन पुरुषों के मन और नेत्रों को आनन्ददायक मेरे पुत्र को सूचना मिलते ही शरीर कम्पित होने लगा और वह धरती पर इस प्रकार गिर पड़ा मानो वज्रपात से पर्वत गिर पड़ता है।

तत्पश्चात् सचेत होकर 'हा नाथ! हाय पिता! आपके बिना समस्त जगत अन्धकारमय ज्ञात होने लगा है। अब इस अवन्ति का स्वामी कौन होगा? हे पिता! आपके बिना यह राज्य अब रुचिकर होने के बदले दुःखदायक हो गया है। हे पिता! इस विशाल राज्य पर अब वज्रपात हो तो भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है।' – इत्यादि प्रकार से रुदन करते–करते पुकार करने लगा।

हे राजन! उस समय मेरे पुत्र की ऐसी दशा देखकर वृद्ध मन्त्री, सेनापति आदि मुख्य कर्मचारीगण और वृद्ध कुटुम्बीजन उसे सम्बोधन करने लगे कि—'हे पृथ्वीनाथ! जैसे बने वैसे इस दु:खसहित अश्रुपात को रोककर चित्त में समाधान करो।

इस समस्त संसार में जितने महापुरुष हुए, वे सब ही काल का ग्रास बन गये हैं। इस पृथ्वी पर महाराज नल, नहुष, सगर, आदि बड़े-बड़ प्रजापालक हुए परन्तु सब ही काल के वश होकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। इस पृथ्वी पर वेणुपाल आदि महाबली राजा हुए, उनका भी काल ने नाश किया। महाराज! पूर्व में नारायण, प्रतिनारायण, हलधर, चक्रवर्ती और कामदेव आदि महाप्रतापी तीन खण्ड और छह खण्ड के नाथ अनेक राजा हुए। उन्होंने पृथ्वी पर अनेक अद्भुत कार्य किये परन्तु वे भी यमराज के मुख का ग्रास हो गये।

हे चिरंजीवी! जो जन्म धारण करता है, वह मरण को साथ ही लाता है; इसलिए संसार की अवस्था जानकर शोक का परित्याग करो और शान्तचित्त से निज पिता और दादी का विधिपूर्वक अग्नि संस्कार करो।'

इस समय समस्त कर्मचारियों के सम्बोधन से यशोमति शोक का त्यागकर पिता और दादी के अग्निदाह का प्रबन्ध करने लगा। उस समय समस्त कुटुम्बियों के मुखमण्डल की कान्ति नष्ट हो गयी, परन्तु उस दुष्टा अमृतादेवी ने यद्यपि बाह्य दिखावट से रुदन किया, तथापि उसके मुख की शोभा प्रसन्न ज्ञात होने लगी।

उदासचित्त यशोमति पुन: मन में सन्तप्त होने लगा और कहने लगा कि—'पिता के बिना क्या जीवितव्य है?'

पृथ्वीनाथ! मेरे शोक से सम्पूर्ण अन्तःपुर की स्त्रियाँ शोक सूचक लाल वस्त्र धारण करके अनेक लोगों के साथ मेरे मृत देह के पीछे आती हुई ऐसी लगती थी मानो सूर्य के पीछे सन्ध्या गमन करती हो। मेरे शव के साथ जाते हुए सभी लोग ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे कि चन्द्रमा के साथ अनेक नक्षत्र समूह गमन करते हैं। इसी प्रकार रुदन करते-करते महाकाल नामक यक्ष के मन्दिर की दक्षिण दिशा की ओर श्मशान में ले गये। वहाँ समस्त ही परिवारजन, अन्य देश के राजा और अन्य गाँव के लोग आये, परन्तु मलिनभाव की धारक दुष्टा, पापिनी कूबड़ा में आसक्त अमृता नहीं आयी।

नृपवर! उपरोक्त समुदाय के बीच यशोमति ने पिता-दादी दोनों का अग्नि संस्कार किया। तत्पश्चात् मेरे नाम से अनेक ब्राह्मणों को एकत्रित करके उन्हें अनेक गायें, रत्न, स्वर्ण हार, बहुमूल्य उत्तम वस्त्र और अनेक गाँव प्रदान किये। अन्धे, लूले, लँगड़े, भिखारी, दरिद्री जीवों को अनाज दिया, वस्त्रादि दिये। तत्पश्चात् परिवार के लोगों को उत्तम भोजनादि से सन्तुष्ट किया।

पृथ्वीनाथ! मेरे लिये यशोमति ने अनेक प्रकार के दान किये, तथापि मैं समस्त योनियों में उत्कृष्ट मनुष्य पर्याय को प्राप्त नहीं हुआ।

राजन! देखो, संसारी जीव मिथ्यात्वकर्म के उदय से कैसे मोहित हो रहे हैं कि जिन्हें इस बात का भी परिज्ञान नहीं है कि जीव अपने ही शुभाशुभभावों से अनेक प्रकार के कर्म बाँधकर संसार में भ्रमण करता है और उसके लिये अन्य जन कितना भी दान-पुण्य करे, तथापि उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता, अपितु मिथ्यात्व का बन्ध होता है।

यह अज्ञानी प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पिता के खाने से पुत्र का पेट नहीं भरता, उसी प्रकार पुत्र के भोजन करने से पिता का पेट नहीं भरता। जब निकट बैठे हुए का पेट नहीं भरता तो फिर जो दूसरी गति में चला गया है, उसके निमित्त से जो कुछ भी दिया जाये, वह उसके पास किस प्रकार पहुँच जायेगा?

विषयासक्त जीव तब तक अति घोर संसार में ही भ्रमण करता है, जब तक सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र को प्राप्त नहीं करते या उनका चिन्तवन नहीं करते।

❖ ❖ ❖

प्रजापति! यह तो निश्चय है कि समस्त जीव अपने किये हुए कर्मों के अनुसार संसार में भ्रमण कर अनेक योनियों में उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मैं अपने कर्मों के आधीन मृत्यु प्राप्त करके हिमवान पर्वत की दक्षिण दिशा के क्षुद्र वन में मयूर के उदर में उत्पन्न हुआ। वह वन बाघ, सिंह, हाथी, गैंडा, हिरण और भालुओं के समूह से भयानक है। उस वन में बाघ के समूह हिरणों का घात करते हैं और सिंहगण मदोन्मत्त हाथियों के समूह से युद्ध करते हैं।

उस निर्जन वन में कहीं गिद्ध आदि पक्षियों के समूह निवास करते हैं, कहीं सर्प और नेवला युद्ध करते हैं; कहीं भीलों का समूह राहगीर को लूटने के लिये इन्तजार करके खड़े हैं, कहीं बन्दर और लंगूर वृक्ष की शाखाओं को कम्पित करते हुए घोर शब्द करते हैं, कहीं अष्टापद के समूह विचरते हैं, कहीं कस्तूरी के लिये हिरणों के घात में अनेक दुष्टजन विचर रहे हैं।

वृक्षों के समूह से सघन वन में अश्रु परिणामों के योग से

दु:ख से व्याप्त मयूर कुल में मुझे कुकर्म ने उत्पन्न किया।

राजन! उस भयानक वन में मयूरी के तीव्राग्नियुक्त उदर में उत्पन्न हुआ। मैं वहाँ, जिस प्रकार दुष्टजनों के वचन से सज्जन पुरुष जलते हैं अर्थात् दाह को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार मयूर की उदराग्नि में जलने लगा। जिस प्रकार तपी हुई कढ़ाई में नारकी दु:खी होते हैं, उसी प्रकार मैं भी दु:खी हुआ। फिर मेरी माता मयूरी ने मुझे जन्म देकर विलाव आदि हिंसक जीवों के भय से काँटेवाले वृक्षों के खण्ड से आच्छादित रेत में अपने पँखों से ढाँककर पेट की गर्मी से संतप्त किया।

तत्पश्चात् दिन पूर्ण होने पर मुझे अण्डे में से बाहर निकाला। फिर जब तक मैं चलने और उड़ने योग्य नहीं हुआ, तब तक मेरी माता ने मुझे अपने चोंच से अन्न-कण खिलाये, उनसे ही मेरा उदर पूर्ण होता था।

इस प्रकार काल व्यतीत करते-करते एक दिन वन में भ्रमण करती हुई माता को दुष्ट भील ने मार दिया और मुझे जीवित ही पकड़ लिया। फिर माता को एक वस्त्र में बाँधा और मुझे दूसरे वस्त्र में लपेटकर अपने घर की ओर चल दिया।

नृपवर! उस समय मैं अनेक प्रकार से रुदन भी करता था परन्तु उस दुष्ट शिकारी के हृदय में जरा भी दया नहीं आयी। उस भील ने गाँव में जाकर मेरी मृत माता को तो कोतवाल को बेच दिया और मुझे अपने घर ले जाकर पिंजड़े में बन्द कर दिया। तत्पश्चात् मुझे देखकर भीलनी ने अपने पति से इस प्रकार कहा—

'रे दुष्ट पापिष्ट! तू इस बालक को क्यों लाया? इसे मारने से क्या होगा? इसका एक ग्रास भी नहीं होगा। क्या इससे पेट भर

जायेगा ? तू बड़ी मयूरी तो कोतवाल को दे आया और छोटा बालक यहाँ लाया है। अब क्या तुझे खाऊँ ? रे नीच ! अब तू मेरे सामने से चला जा, मुझे अपना मुख मत दिखा।'

इस प्रकार अपनी पत्नी के कठोर और रूक्ष वचन सुनकर भील कहने लगा—

'अरे दुष्टनी ! तू क्यों घबराती है ? अभी जाकर इस बच्चे को भी बेच आता हूँ। उससे जो कुछ पैसा मिलेगा, उसका अनाज लाकर तुझे देता हूँ, फिर अच्छी तरह से पेट भर लेना।' ऐसा कहकर भील ने मुझे (मयूर बालक) को भी ले जाकर कोतवाल को बेच दिया। कोतवाल ने मुझे मारा नहीं परन्तु मेरा पालन-पोषण किया तथा कुत्ते, बिल्ली आदि जीवों से मेरी रक्षा की।

पृथ्वीनाथ ! उस कोतवाल के घर में मैं हंस की भाँति उसकी जैसी कान्तियुक्त शरीरवाला हुआ। मैं वहाँ अनाज के दाने खाकर मनुष्यों को आनन्दित करते हुए सुमधुर शब्द करता था।

नरश्रेष्ठ ! पापी जीवों के शरीर भी आहार के साथ बँधे हुए होते हैं। मैंने कोतवाल के घर में पेट भर भोजन किया, जिससे पंच वर्ण के रत्नों की माला जैसे पंख हुए तथा मेरा समस्त शरीर अति शोभायुक्त हो गया। मुझे देखकर हर्षित होकर कोतवाल ने विचार किया कि इस बालक को उज्जैनी नगरी ले जाकर महाराज यशोमति को भेंट करूँगा।

मदमति चन्द्रमति नामक मेरी माता का जीव उसी उज्जैनी नगरी में विसरस कुत्ते की योनि में उत्पन्न हुआ।

❖ ❖ ❖

राजन! मेरी माता चन्द्रमति जो कि विष्णु के चरणों की भक्त, ब्राह्मणों को भोजन के बाद बचे हुए माँस का भोजन करनेवाली, ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करनेवाली, निरन्तर चण्डिकादेवी को पूजनेवाली, देवी के लिये अनेक पशुओं को मारनेवाली, गंगा नदी के पानी को पवित्र माननेवाली, बकरा–हिरण–पाड़ा आदि से कुलदेवी और मृत पितृजनों को तृप्त करनेवाली और जैन मतानुयायी जीवमात्र के रक्षक नग्न दिगम्बर मुनियों की हमेशा निन्दा करनेवाली थी। वह अपने अशुभकर्मों की प्रेरणा से कुत्ते की योनि में उत्पन्न हुई।

वह श्वान महाबलवान पवन समान वेग का धारक, चंचल और कुटिल वज्रसमान कर्कश नखवाला, जो हाथ के प्रहार से हिरणों के समूह का विदारक था। वह महा विकराल और पाप क्रिया में रत श्वान, महाराज यशोमति को भेंट में आया और उसी दिन मुझे अर्थात् मयूर को भी कोतवाल ने ले जाकर महाराज को प्रदान किया।

राजन! इन दोनों को देखकर महाराज यशोमति अति हर्षित हुआ और मुझे घर की शोभा बनाया अर्थात् महल में रखने का आदेश दिया। उस समय मेरे पुत्र यशोमति ने प्रेमपूर्वक मेरे समस्त अंगों पर हाथ फिराया और अत्यन्त प्रसन्नता करते हुए अपने हृदय में इस प्रकार विचार करने लगा—

निपुण विधाता ने यह कैसा मनोरंजक मयूर बनाया है! जैसा मनोज्ञ मयूर है, वैसा ही मनोरंजक श्वान भी है। यह तो सिंह समान बलवान, अपने वेग से हिरणों के समूह का घातक है तथा मुझे तो ऐसा लगता है कि इस श्वान के समक्ष तो विष्णु महाराज का सूकर भी नहीं बच सकेगा!

राजन! इस प्रकार विचार करते हुए तुरन्त ही कुत्ते को श्वान पालकों को हस्तगत किया। उन्होंने उसे यमराज तुल्य जानकर स्वर्ण की साँकल से बाँधा। मुझे महल के बीच छोड़ दिया। जिससे मैं आकाश में उड़ते हुए महल के शिखर पर क्रीड़ा करने लगा। उस समय आकाश में गर्जना करते हुए और ग्रीष्मरूप राजा को भगाने के लिये इन्द्र धनुष का धनुष धारण करते हुए बादलों को देखा।

उस समय वर्षाकाल का आडम्बर देखकर मैं रोमांचित होकर नृत्य करने लगा। पश्चात् जन्मान्तर का जातिस्मरण होने से अश्रुपात करते हुए रुदन करने लगा। उसी समय जमीन पर बैठा हुआ कूबड़ा, उसके प्रति आसक्त अमृतारानी को देखा। तत्काल पूर्व के बैर से ईर्ष्या के आवेश में मैं उन पर गिरा। पूँछ और नख से तथा चोंच द्वारा घात करने लगा।

उसी समय रुधिर की धारा से व्याप्त अति विह्वल होकर दोनों व्यक्ति हाथ ऊँचे करके हाहाकार करते हुए पृथ्वी पर गिरे। फिर अमृतादेवी ने तुरन्त ही उठकर मणि की माला से मेरा पैर तोड़ दिया, इसलिए मैं विचार करने लगा—

जिस समय मैं सामर्थ्यवान अद्वितीय राजा था, उस समय तो इसका घात नहीं किया परन्तु इस समय इस कूबड़े पर प्रहार किया, इसलिए संक्लेश का कारण हुआ।

राजन! ऐसा विचार करते हुए मैं, यद्यपि मेरा पैर टूट गया था, तथापि वहाँ से जैसे-तैसे करके भागा परन्तु अमृता की आवाज पड़ने से अनेक दासियाँ मेरे पीछे दौड़ पड़ी और जिनके हाथ में जो आया, वह लेकर मुझे मारने लगीं। अनेक दासियाँ

विविध प्रकार से मुझे मारने लगी, तथापि मैं भागता ही गया परन्तु देव ने फिर प्राण बचने नहीं दिये। माता के जीव कुत्ते ने अचानक आकर इस प्रकार से मेरा गला पकड़ा कि जिससे मैं प्राण विहीन हो गया।

अरे रे! देखो, संसार की विचित्रता! जो माता मेरे अशोभन में विह्वल हो जाती थी, उसी माता के जीव कुत्ते ने दाँत से मुझे ऐसा पकड़ा कि मेरे पुत्र ने—महाराज यशोमति ने—मुझे छुड़ाने के लिये बहुत मेहनत की, तथापि उस दुष्ट कुत्ते ने नहीं छोड़ा, तब यशोमति ने क्रोधित होकर कुत्ते के सिर पर ऐसा दण्ड प्रहार किया कि तत्काल सिर के दो भाग हो गये और कुत्ते के प्राण भी निकल गये।

नृपवर! देखो, कर्मों का विकार कैसा विचित्र है? कि माता के जीव कुत्ते ने पुत्र के जीव मयूर को मारा और पौत्र ने दादी के जीव कुत्ते को मारा, फिर विलाप किया।

महाराज! उस समय मेरे मृत शरीर को देखकर यशोमति इस प्रकार विलाप करने लगा कि 'हा मयूर! हा घर की लक्ष्मी के आभूषण! तेरे बिना महल के शिखर और ध्वजाओं की शोभा कहाँ है?

हा शिखिराज! तेरे बिना घर की बावड़ी में घूमते हुए सर्प किस प्रकार नष्ट होंगे? हा शिखण्ड! तेरे बिना विचित्र पुष्पों के बीच कामिनियों के शब्द सुनकर कौन नृत्य करेगा' — इत्यादि। इस प्रकार मयूर के शोक से निवृत्त नहीं हुआ कि इतने में कुत्ते का मृत शरीर देखकर विह्वल होता हुआ विलाप करने लगा।

'अहो श्वान! केसर पत्र का भक्षण और स्वच्छ जल को क्यों

नहीं पीता। हा श्वान! अब यहाँ किस प्रकार शयन कर रहा है? मेरे कुरुबिन्दु नामक वन में निवास क्यों नहीं करता? क्या मेरे एक ही दण्ड प्रहार से मुझसे नाराज हो गया? यह देख, स्वर्ण के पात्र में उत्तम भोजन दूध मिश्रित रखा हुआ है, वह क्यों नहीं खाता? शीघ्रता से भागनेवाले हिरण वन में स्वेच्छाचारी हो रहे हैं। इसलिए हे श्वान! इस समय उन हिरणों को मारने के लिये तेरे सिवाय दूसरा कौन समर्थ है?'

राजन! उपरोक्त प्रकार से चिन्तवन करने के पश्चात् जिस प्रकार से यशोधर और चन्द्रमति का अग्नि संस्कार हुआ था, उसी प्रकार मयूर और श्वान का अग्नि संस्कार किया गया। तत्पश्चात् उसी प्रकार पिण्ड दान, ब्राह्मण भोजन आदि समस्त कार्य किया गया।

नराधीश! देखो, मोहवश होकर सुपुत्र वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि सामग्री ब्राह्मणों को इस कामना से देता है कि मेरे मृत पिता के पास पहुँच जायेंगे परन्तु वहाँ कुछ भी नहीं पहुँचता। ब्राह्मणों के वाणी जाल में फँसकर लोग ऐसा करते हैं, जिसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

❖ ❖ ❖

धराधीश! जिस समय मैं प्राणरहित हुआ कि तत्काल सुवेलगिरि के पश्चिम भाग में महाशुभ अरण्य के मध्य में कानी नेवली के गर्भ में उत्पन्न हुआ। उस निर्जन और भयंकर वन में उस क्षुधा–तृषा से पीड़ित शुष्क स्तना नेवली के उदर से जैसे ही मेरा जन्म हुआ कि मैं भी उसके दूधरहित स्तनों को चाटने लगा, परन्तु दूधरहित मेरी तृप्ति किस प्रकार होती? फिर ग्रीष्म की

ज्वाला से संतप्त होते हुए मैंने एक तुच्छ सर्प देखा और तुरन्त ही मैं उसे निगल गया।

उस समय मुझे सर्प का स्वाद अच्छा लगा; इसलिए मैंने बहुत सर्पों को खाया। अब मैं – नेवला, सर्पों को खाते हुए वृद्धि को प्राप्त होकर समय व्यतीत करने लगा।

धराधीश! मेरी माता का जीव श्वान की पर्याय में से उसी वन में सूक्ष्म जीवों का भक्षण करते हुए तीक्ष्ण विष का धारक भयंकर सर्प हुआ। वह विषधर वन में क्रीड़ा करते हुए जैसे अपने बिल में जाने लगा कि तुरन्त ही मैंने उसकी पूँछ का भाग मुख से पकड़ लिया और उसे खाने लगा।

राजन! ज्यों ही मैंने उसकी पूँछ काटी, उसने तत्काल पीछे घूमकर विकराल फण के घात से मेरे मुँह में विषाग्नि छोड़ दी, पश्चात् मजबूत दाँतों से मेरी पीठ की चमड़ी और हड्डियाँ तोड़ डाली, जिससे खून की धारा बहने लगी।

यह अवस्था देखकर फिर वापस मैंने उछलकर उसके फण को ऐसा काट खाया कि वह तत्काल मरणान्त हो गया और मैंने भी उसके जहर के कारण अपने प्राण विसर्जित कर दिये।

नरश्रेष्ठ! इस संसार में ऐसा कौन है कि जो कर्मों के फल का उल्लंघन कर सके? इस कर्म के अनुसार ही असंख्य जीव एक-दूसरे के भक्षक बन रहे हैं। जिस प्रकार स्थावर-जंगम जीवों का दो-तीन-चार इन्द्रिय जीव भक्षण करते हैं, उसी प्रकार इन विकलेन्द्रिय जीवों को पंचेन्द्रिय जीव भक्षण करते हैं। जिस प्रकार पूर्व वैर के कारण जीव एक-दूसरे को मारते रहते हैं, उसी प्रकार मेरी माता के जीव सर्प और मेरे जीव नेवले ने परस्पर

एक-दूसरे को मारकर कुयोनियों में उत्पन्न होकर बहुत दुःखों का अनुभव किया।

राजन! इस प्रकार कोई मेरे कथन को सुनकर यदि हिंसा का त्याग करेगा तो वह मदरहित परमात्मदशा को प्राप्त करेगा।

❖ ❖ ❖

राजन! उज्जैनी नगरी में क्षिप्रा नामक नदी है। मैं उस निष्ठुर सर्प के घात से मरण को प्राप्त होकर वापिस क्षिप्रा नदी में मछली के गर्भ में आकर स्थिर रहने लगा।

तत्पश्चात् मछली के गर्भ से जन्म लेकर क्रमपूर्वक वृद्धिगत होते हुए बड़े-बड़े मगरमच्छों के शरीर को चीरने में समर्थ तथा आकाश में उछलना, उलटे गिरना, पानी में घूमना इत्यादि कार्यों में अति प्रवीण हो गया। इस प्रकार क्षिप्रा नदी के अति निर्मल स्वच्छ और चंचल जल में विचारते-तैरते और मछलियों के समूह को निगलते हुए काल व्यतीत करने लगा।

महाराज! मेरी माता का जीव, जो कि सर्प हुआ था, वह मेरे घात से मरकर घोर कर्मानुसार उसी नदी में जीवों का अधिपति शंशुमार हुआ। देवयोग से मुझे देखकर पूर्व बैर के कारण जहाँ मुझे तीव्र नख और दाँतों से पकड़कर मारना शुरु किया था, कि इतने में महाराज यशोमति के महल की कोमलांगिनी चन्द्रवदना दासी निज-नुपुरों के शब्दों की झंकार करती हुई, सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभरणों से शोभायमान, दिव्य सुगन्ध से पूरित, कण्ठगत मुक्ताहार की पंक्ति से दिव्य रूपाकार, विनोदपूर्वक सरिता के स्वच्छ जल में क्रीड़ा करने लगी।

इस प्रकार जल में निश्चल तैरते-तैरते एक दासी ने दूसरी

दासी को धक्का मारा तो दैव की विचित्रता देखो कि वह मेरे ऊपर आकर गिरी। उस समय शंशुमार ने जो मुझे पकड़ा था, वह मुझे तो छोड़ दिया परन्तु तत्काल उस दासी को पकड़कर नख और दाँत से विदारण करने लगा।

नृपवर! उस समय हाहाकार करती हुई भयंकर कम्पित होती हुई सभी दासियाँ पानी से भागने लगीं। तत्पश्चात् रानी के सेवकों ने महाराज यशोमति के समक्ष जाकर विज्ञप्ति की कि श्री महाराज! आपकी मान्य कुब्जा दासी को जलकेलि करते हुए माँसलुब्ध शंशुमार नामक नदी का जीव नख और दाँतों से चीरने लगा है।'

यह सुनकर क्रोधित होकर महाराज यशोमति ने कहा कि 'ऐसा जीव किसे प्रिय होगा? जिसने सूकर, मांसर, आदि वनवासी जीवों को जलपान करते समय भक्षण किया तथा स्नान क्रीड़ा करते समय अनेक स्त्री-पुरुषों को खाया, ऐसे दोष की खान इस शंशुमार नामक जीव को तुरन्त ही नेत्रों को असुन्दर और अग्नि की ज्वाला समान यमराज के नगर में पहुँचा दो।'

इस प्रकार कहकर, अनेक योद्धाओं सहित महाराज यशोमति ने स्वयं नदी के किनारे जाकर धीवरों को आदेश दिया कि 'अत्यन्त शीघ्रता से इस नदी के गहरे बिल में से जिस प्रकार बने, उस प्रकार खोजकर शंशुमार को पकड़ो।'

नृपवर! महाराज यशोमति के क्रोधपूर्ण शब्दों से आकाश गुंजायमान हो गया। यह सुनकर अनेक धीवर शीघ्र ही शिप्रा नदी में कूद पड़े, तत्पश्चात् धीवर घूमते-घूमते कोलाहल शब्द करके शंशुमार को पकड़कर उसका कण्ठ छेदकर बाहर किनारे पर ले आये।

नृपवर! उस समय शंशुमार को देखकर क्रोधित भाव में महाराज ने आदेश दिया कि 'इस दुष्ट जीव को अग्नि में सेंको।' यह सुनकर किंकरों ने अग्नि प्रज्वलित करके शंशुमार को अग्नि में हवन कर दिया।

राजन! जब मैं नदी में क्रीड़ा कर रहा था, उतने में जिन्होंने मारने का विकल्प किया है, ऐसे धीवर हा-हाकार करते हुए आगे आये। उन धीवरों ने सघन जाल मुझ पर डाल दिया, जिससे मैं युद्ध में पराजित शत्रु की भाँति जाल में फँस गया। उस समय मैं, जिस प्रकार तीव्र मोह के उदय के वश होकर संसार जीव पीड़ित होता है, उसी प्रकार जाल में फँसकर धीवरों के पैर के प्रहार से अत्यन्त क्लेश को प्राप्त हुआ।

पृथ्वीनाथ! जिस समय धीवरों ने जाल में फँसाकर मुझे नदी के किनारे रखा, उसी समय एक पुरुष ने कहा कि इस मत्स्य को मत मारो क्योंकि इसे मारने से अत्यन्त दुर्गन्ध व्याप्त हो जायेगी। ऐसा कहकर पूर्व भव के पुत्र यशोमति को दिखाया। यशोमति ने मेरा शरीर देखकर आगम वेदी ब्राह्मणों से मेरा शारीरिक वर्णन करने के लिये कहा, तब ब्राह्मणों ने मुझे उलट-पुलट कर सामुद्रिक शास्त्र से लक्षण इस प्रकार कहने लगे—

'यह पाण्डुरोहित जाति का क्रूर मच्छ नदी के प्रवाह सन्मुख तैरता है तथा यह मच्छ देव और पितृजनों की बलि के योग्य है। श्री विष्णु भगवान ने जगत की रक्षा के लिये मत्स्यावतार धारण करके छह अंगयुक्त वेद को समुद्र में से निकाला है। इसलिए ब्राह्मणों ने वेद को अति पवित्र माना है', इत्यादि कहकर ब्राह्मणों ने राजा को सम्मति दी कि यह मच्छ महारानी अमृतादेवी के

महल में भेजना चाहिए। फिर क्या था, तुरन्त ही महाराज ने मच्छ को महल में ले जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। इसलिए दुष्ट कर्मा किंकरों ने मुझे (अर्थात् मच्छ को) अमृतादेवी के मन्दिर में (महल में) पहुँचा दिया और बहुत समय तक मुझे जीवित रखा।

नृपवर! वहाँ पहुँच जाने से ब्राह्मणों का प्रयोजन सिद्ध हो गया अर्थात् किसी एक प्रसंग पर ब्राह्मणों ने अमृता से कहा— 'हे माता! परमार्थतः यह रोहित मच्छ समस्त मच्छों में उत्तम माना गया है, इसकी पूँछ का यदि ब्राह्मणों को भोजन कराया जाये तो अवश्य ही पितृजनों को तृप्ति होती है।'

पृथ्वीनाथ! उस समय 'ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः' की कहावत सत्य सिद्ध करते हुए, अमृता ने मेरी पूँछ कटाकर सोंठ, मिर्च आदि मसाले में पकाकर ब्राह्मणों को प्रदान की, जिससे उन उन सभी ब्राह्मणों ने पेट भरकर भोजन किया और आशीर्वाद देते हुए अपने गृह की ओर प्रस्थान किया।

तत्पश्चात् मेरे बचे हुए शरीर को अनेक मसालों में मिलाकर गर्म तेल के कढ़ाई में जिस समय पकाया गया, हे राजन! उस समय की जो वेदना हुई, वह मैं ही जानता हूँ अथवा केवली भगवान ही जान सकते हैं।

राजन! जिस समय तपे हुए तेल में पड़ा हुआ मैं पकाया जा रहा था, उसी समय जातिस्मरण होने से मैंने पूरे परिवार को पहिचान लिया। जिससे एक तो मानसिक दुःख और दूसरा शारीरिक कष्ट–इस प्रकार दोनों प्रकार के क्लेश का अनुभव किया।

नरश्रेष्ठ! तुम भी इस बात का अनुभव कर सकते हो कि जिस समय नमक, मिर्च आदि मसालों में मिलाकर मुझे गर्म तेल में पकाया गया होगा, उस समय की वेदना क्या नरक की वेदना से किसी प्रकार कम हो सकती है? कभी भी नहीं। नरकों में तो केवल गर्म तेल में ही पकाया जाता है, परन्तु मुझे तो नमक, मिर्च, सोंठ आदि तीक्ष्ण मसालों में मिश्रित करके पकाया गया, जिसमें एक तो अग्नि की वेदना और दूसरी मसाले का कष्ट; उसमें भी पक्व हो गया है या नहीं, उसकी परीक्षा के लिये लोहे के नोंकदार सुईयों से बार-बार छेदना इत्यादि कष्टों का कहाँ तक वर्णन करूँ! अरे! जिन दुःखों को वाग्वादिनी भी नहीं कह सकती। पक रहे मेरे शरीर को कलछियों से हिला-हिलाकर रसोईयों ने मुझे पकाया। तत्पश्चात् बहुत ही जीरा, मिर्च, नमक आदि डालकर मेरे शरीर के स्वाद को चखने लगे। राजन! उस समय सातवीं नरक के नारकी की भाँति उछाल-उछालकर पकाया गया, तत्पश्चात् पके हुए शरीर को छुरी से टुकड़े करके लोहे के काँटों से ब्राह्मणों ने खाया। तत्पश्चात् मेरे पुत्र यशोमति, मेरी स्नेहवती अमृतादेवी तथा उसका कूबड़ा आदि समस्त परिवार ने भोजन किया।

नृपश्रेष्ठ! देखो, संसार की विचित्रता! कि पितृ के निमित्त से मुझे ही खाया, यह अशोभनीय कर्म जिह्वा लम्पटी माँसभक्षी, विषयासक्त ब्राह्मणों का ही कर्तव्य है, क्योंकि ब्राह्मणों के उपदेश से सभी अज्ञानी लोग हिंसा के कार्य को धर्म मानकर अंगीकार करते हैं, इस कारण समस्त ही दोष ब्राह्मणों पर ही है।

❖ ❖ ❖

मेरी माता का जीव जो शंशुमार के शरीर में से निकलकर पार्श्वगाम में बकरी हुई थी, मैं भी मच्छ की पर्याय से प्राण त्याग करके दैवयोग से उसी बकरी के गर्भ से उत्पन्न होकर बकरा हुआ।

तत्पश्चात् क्रमपूर्वक वृद्धिगत होते हुए जब जवान हुआ, तब कामान्ध होकर अपनी माता बकरी के साथ ही मैथुन कर्म करने लगा। उसी समय यूथ के स्वामी बकरी ने ईर्ष्यायुक्त क्रोध के आवेश से मुझे मार दिया। वहाँ से मरकर मैं अपने ही वीर्य से उसी बकरी के गर्भ से पुनः बकरा हुआ।

यहाँ कोई शंका करे कि अपने ही वीर्य से अपना जन्म किस प्रकार हो सकता है ? तो उसका समाधान इस प्रकार है कि जिस समय मादा का रुधिर और नर के वीर्य का संयोग होता है, उस समय से सात दिन तक उसमें जीव आता है, जो सात दिन तक मिला हुआ रहता है और यदि सात दिन के अन्दर जीवोत्पत्ति न हो तो वह पृथक् होकर खिर जाता है।

इस प्रकार जिस समय बकरी का रुधिर और बकरे के वीर्य का संयोग हुआ, उसी समय बकरे का मरण हुआ। जिससे वह तुरन्त ही उसके गर्भ में जाकर उत्पन्न हो गया और फिर दूसरे भव में भी बकरा ही हुआ है।

राजन! तिर्यंचों में शर्म नहीं होती। माता को स्त्री बना लेना सहज होता है। उसी प्रकार मैंने भी माता के साथ भोग किया। जिस समय मुझे इस बात का स्मरण आता है, तब मुझे तीव्र वेदना होती है। जब मैं फिर से बकरी के गर्भ में आया और क्रमपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होने लगा, तब यशोमति महाराज शिकार

करने के लिये वन में आये। उन्होंने हिरण के लिये पूरे वन में परिभ्रमण किया परन्तु एक भी हिरण नहीं मिला।

उस समय जब घूमकर वापस आये तो क्या देखा कि मेरी माता बकरी और यूथ नायक बकरा - ये दोनों मैथुन कर्म कर रहे थे। उस समय क्रोध के आवेश में यशोमति महाराज ने अपने भाले से दोनों का घात कर दिया। पश्चात् निकट आकर देखते हैं कि बकरा-बकरी दोनों दो भाग होकर रुदन करते हुए मर गये और गर्भ में रहे हुए मेरे आठों ही अंग कम्पायमान दिखायी दिये।

उस समय यशोमति महाराज ने बकरी के गर्भ में से बाहर निकलवाकर मुझे बकरा पालक को हस्तगत किया। उसने सावधानीपूर्वक अन्य बकरियों से दूध पिलाकर मेरा पालन-पोषण किया, जिससे मैं उनके घर में वृद्धि को प्राप्त हुआ, परन्तु पशु योनि सम्बन्धी अज्ञानदशा के कारण माता, पुत्री और बहिन के साथ मैथुन सेवन करते यूथ का स्वामी बनकर सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगा। इतने में....

एक दिन यशोमति महाराज ने कुलदेवी के सन्मुख इस प्रकार प्रार्थना की—'हे माता! हे भट्टारके! हे महिष विदारणी! हे भगवती! तेरी कृपा से मुझे हिरण का लाभ होगा तो वेगवान बकरे की बलि चढ़ाऊँगा।' ऐसा कहकर राजा ने शिकार के लिये महारण्य में प्रवेश किया और वहाँ तुरन्त ही शिकार का लाभ हुआ। तत्पश्चात वापिस घर आकर उन्होंने देवी के लिये स्थूल बकरा बुलवाया और उसे मारकर उसका माँस देवी को चढ़ाया।

उसी समय रसोईदारों ने मुझे यूथ नायक बकरे को लाकर

वहीं बाँध दिया, जिससे दैवयोग से कोई चील पक्षी ने किसी जन्तु का माँस लाकर मेरे बगल में डाल दिया, जिससे सूँघकर मैं तुरन्त ही उछल गया, तब मुझे फिर लम्बी डोरी से इस प्रकार बाँधा गया, जिस प्रकार संसारी जीव कर्मों के बन्धन से बँध जाता है।

राजन! अज्ञानी लोग हिंसा कार्य करते हुए किंचित् भी भयभीत नहीं होते। उन मिथ्यामार्गियों के हृदय में इस बात का पूर्ण विश्वास है कि दीन पशुओं की बलि देने से देवी प्रसन्न होकर समस्त कार्यों की सिद्धि करती है।

हा! धिक्कार है उन मूर्खों की बुद्धि को, जो कि पर जीवों का घात करके अपने कार्य की सिद्धि मानते हैं।

तत्पश्चात् अन्य लोगों के लिये बकरे के माँस के ग्रास दिये गये और क्षुधा दूर करनेवाले अनेक रसयुक्त मदिरा तथा मूँग की दाल भी दी गयी। तत्पश्चात् अनेक वस्त्र और गायों का दान करके यशोमति महाराज ने कहा कि यह हमारा समस्त ही धन स्वर्ग में विराजित हमारे पिता के पास पहुँचे।

राजन! उस समय क्षुधा-तृषा से पीड़ित मैं—बकरा—उसी स्थान पर दृढ़ डोरी से बँधा हुआ था, इसलिए महाराज यशोमति के वाक्यों से जातिस्मरण प्रगट होने से मैं अपने हृदय में विचार करने लगा कि इस समय तो मैं वस्त्र-अलंकार से रहित, भूखा-प्यासा, रस्सी से बँधा हुआ हूँ। मेरे पुत्र ने गर्वसहित अनेक प्रकार का दान किया, जो निकट ही बैठे हुए मुझे कुछ नहीं मिला तो अन्य दूर स्थित जीवों को कैसे मिलता होगा?

राजन! उस समय मेरा पूरा परिवार अनेक रसयुक्त बानगियों

का भोजन कर रहा था और मैं वहीं भूख-प्यास से पीड़ित सबके मुख के सामने देख रहा था। परन्तु किसी ने ऐसा नहीं कहा कि एक ग्रास इसे भी दें। मेरे निमित्त से बहुत ही धन का दान दिया गया और निकट में ही बैठे हुए मुझे कुछ नहीं मिला तो निश्चय हुआ कि यह समस्त दान ब्राह्मणों के उदर की पूर्ति के लिये ही होता है, किसी जीव को नहीं मिलता।

श्रीनाथ! जिस समय मेरा पुत्र यशोमति निज मातासहित भोजन करते हुए निकट के जीवों को रंजित कर रहा था, उस समय मैंने समस्त परिवार तथा अन्त:पुर को देखा परन्तु निज प्रिया अमृतादेवी को नहीं देखा। इतने में सड़े हुए माँस की तीव्र दुर्गन्ध आयी। उस समय दासियाँ वार्ता कर रही थीं कि—

प्रिय बहिन! कैसी मरे हुए बकरे के सड़े हुए माँस की दुर्गन्ध आ रही है। इतनी दुर्गन्ध कहाँ से आ रही है?

दूसरी दासी ने कहा—'अरे! तू निश्चित भोली लगती है। ऐसी दुर्गन्ध बकरे की थोड़े ही होती है? बहिन! यह तो मछली के सड़े हुए माँस की दुर्गन्ध है।'

तीसरी दासी बोली—अरे! यहाँ से चलो। इस दुर्गन्ध से उल्टी होती है। मुझे तो लगता है कि महारानी अमृतादेवी के गलित कोढ़ की यह विभत्स दुर्गन्ध आती है।

अन्य दासी ने कहा—अरे! तुम सब पागल हो गयी हो क्या? तुम्हें कुछ खबर है या ऐसे ही बोले जा रही हो? सुनो! मैं तुमसे कहती हूँ वैसा है। तुम सब कसम खाओ कि मेरा नाम किसी को नहीं कहोगी। इस दुष्टा अमृतावती ने प्रिय जार कूबड़ा के कारण अपने पति यशोधर महाराज और अपनी सास चन्द्रमती

को भोजन में हलाहल जहर देकर मार डाला है। इस पाप के उदय से उसका पूरा शरीर गलित कोढ़ से गल रहा है और यह उसी की दुर्गन्ध है।

नृपवर! उपरोक्त प्रकार से दासी के वचन सुनकर मेरी नजर भी घर में स्थित अमृता की ओर गयी। उस समय उसका मुँह देखा तो मुझे ऐसा लगा कि भोजन के समय का माँस का पिण्ड ही क्यों न हो? उस समय अशुभ गात्रा अमृता को मैंने देखा परन्तु मैं उसे पहिचान ही नहीं सका।

पृथ्वीनाथ! उस समय की रानी की दशा देखकर ऐसा ही निर्णय होता था कि पर -पुरुषासक्त व्यभिचारिणी से नाराज होकर कर्मों ने उसकी यह अवस्था बनायी है अर्थात् जो होंठ जार की दृष्टि में बिम्बा फल जैसे लगते थे, वे गल गये थे, जो नख, प्रिय जार के वक्षस्थल को चिह्नित करते थे, वे अतिशय नष्ट-भ्रष्ट हो गये, जो आँख जार की दृष्टि में कमलतुल्य थी, वह फूटी कौड़ी तुल्य हो गयी। तात्पर्य यह है कि जो-जो अंग प्रिय जार कूबड़ा ने अपने हाथ से स्पर्श किये थे, वे सर्व गात्रकर्मों ने क्रोधित होकर कर्म का फल दिखाने के लिये नष्ट-भ्रष्ट कर डाले।

नृपवर! अति तीव्र पाप का फल प्रत्यक्ष होता है और यदि ऐसा न होता तो सम्पूर्ण दुनिया क्यों पाप से डरती! परन्तु प्रत्यक्ष देखते हुए भी दुष्ट लोगों को बोध नहीं होता तो वह उनके भवितव्य का दोष है अर्थात् उनकी ऐसी ही होनहार है।

नृपवर! जब मैं इन विचारों में मग्न था, इतने में तो पापिनी अमृता ने रसोईदार को बुलाकर कहा—

'जो देव और ब्राह्मणों के लिये भोग चढ़ाया गया था, वह घृणास्पद, ग्लानिकारक, बकरे का माँस जो मुझे दिया, वह मुझे नहीं भाता है। अब मेरे लिये सूकर या हिरण का माँस शीघ्रता से दो। जिसे मैं प्रेमपूर्वक खाऊँगी।'

इस प्रकार रानी की आवाज सुनकर बगल में बैठे हुए यशोमति महाराज ने कहा कि—'इस समय सूकर या हिरण का माँस मिलना तो दुष्कर है, परन्तु बकरे का माँस भी भट्ट लोगों ने पवित्र किया है, इसलिए हे रसोईदार! तू इस बकरे के पीछे के पैर को काटकर, उसे पकाकर माता को खाने के लिये दे।'

नृपवर! उस समय बगल में ही बँधा हुआ मैं—बकरा—कम्पित होकर विचारने लगा कि हा! अत्यन्त दु:ख है कि मेरा ही पुत्र मेरा पैर काटकर मेरी स्त्री के भोजन के लिये देने की आज्ञा कर रहा है, तो अब मेरी रक्षा कौन कर सकेगा? इस प्रकार कर्म के फल का विचार करता हुआ मैं दीनतापूर्वक चुप हो गया।

तत्पश्चात् महाराज यशोमति की आज्ञा न पालन करने में असमर्थ रसोईया ने छुरी से मेरा पैर काटकर उसमें उत्तम मसाला डालकर उसे पकाकर अमृता को दिया, जिसे उस कुष्ठ व्याधि से पीड़ित दुर्गन्धा दुष्टा ने रुचिपूर्वक खाया।

पृथ्वीनाथ! माँसभक्षी जिह्वा लम्पटी विप्रों की बात में आकर जो मनुष्य हिंसाकर्म करता है, वह अवश्य ही तीव्र वेदनायुक्त नरकों में जाकर अनेक कष्ट सहन करता है और अनन्त कालपर्यन्त कुयोनियों में भ्रमण करते हुए असंख्य दु:खों का पात्र बनता है।

पृथ्वीनाथ! उस समय एक पैर कट जाने से तीव्र वेदना सहन

करते हुए, तीन पैर से खड़े-खड़े चारों ओर नजर करते हुए मैं विचार करने लगा कि अब मैं किसकी शरण ग्रहण करूँ? अरे! जब मेरे पुत्र ने ही आदेश देकर मेरा पैर कटावा डाला!

❖ ❖ ❖

जो माता चन्द्रमति का जीव बकरी होकर पाप फल भोग रही थी, वह मरकर अमरसिन्धु देश में भैंस के गर्भ से महाबलि भैंसा हुआ।

राजन! एक दिन भ्रमण करते हुए वह भैंसा शिप्रा नदी के पानी में नहा रहा था। उसी समय खड्गधारी योद्धाओं से रक्षित महाराज यशोमति की सवारी का घोड़ा पानी पीने के लिये आया। उस समय उस घोड़े को देखकर जातीय वैर के कारण क्रोधित होकर भैंसा ने अपने सिर से और सींगों से घोड़े को मारा।

तत्पश्चात् राजकिंकरों ने उस भैंसा को जैसे-तैसे बाँधकर महाराज यशोमति के समीप ले जाकर निवेदन किया कि—'श्री महाराज! आपकी सवारी का घोड़ा इस दुष्ट भैंसा ने मारा है, इसलिए यह दोषित है, अतः आप जो आज्ञा करें, वह किया जायेगा।'

नृपवर! उस समय यशोमति अपने घोड़े के मरण सम्बन्धी समाचार सुनकर स्तब्ध हो गया था। तत्पश्चात् क्रोधित होकर उसने आदेश दिया कि 'घोड़े को मारनेवाले इस दुष्ट भैंसा को इस तरह मारो कि जिससे बहुत समय तक तड़पकर इसका जीवन पूर्ण हो।' तत्पश्चात् रसोईया को बुलाकर महाराज ने कहा कि 'इस भैंसा को जीवित ही पकाओ, जिससे इसे घोड़े को मारने का अपराध स्मरण में रहे।'

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार महाराज के आदेश से रसोईयों ने तुरन्त ही उस भैंसा के नाक में डोरी डालकर उसका मुँह और पैर बाँधकर लोहे के तेल से पूरित कढ़ाई में डाल दिया। पश्चात् अग्नि प्रज्वलित करके कढा़ई में नमक, सोंठ, मिर्च, पीपर आदि तीक्ष्ण पदार्थ डाले।

नृपश्रेष्ठ! एक तो अग्नि की तीव्र वेदना और उसमें तीक्ष्ण तथा खारे पदार्थों के कारण भैंसा तड़पते हुए जीभ निकालकर वीरस आवाज करता था। तृष्णा से शोषित होकर जैसे उसने वह खारा पानी पीया कि तुरन्त ही उसके पेट में अत्यन्त पीड़ा हुई और अन्तड़ियों का समूह पश्चिम द्वार से बाहर निकल गया। जहाँ थोड़ा पकने लगा, तब रसोईया द्वारा तीक्ष्ण शस्त्र से कटकर फिर चन्द्रमती के नाम से उत्तम ब्राह्मणों को दिया गया।

❖ ❖ ❖

राजन! मेरी माता चन्द्रमती की तो ऐसी हालत हो गयी। अब मेरी क्या दशा हुई, वह भी सुनो अर्थात् जहाँ भैंसा की यह दशा हो रही थी, तब रक्षा रहित कटे हुए पैर की वेदना से चिल्लाते हुए मुझे राजा की आज्ञानुसार पकड़कर प्राण घातक प्रज्वलित अग्नि में फेंक दिया। फिर जैसे-जैसे मैं पक्व होता था, वैसे-वैसे काट-काटकर ब्राह्मणों को महाराज यशोधर की तृप्ति के लिये देते थे और ब्राह्मण समूह बहुत स्वाद से खाते थे और आशीर्वाद देते थे।

महाराज मारिदत्त! संसार की विचित्रता और ब्राह्मणों की स्वार्थ परायणता देखो कि हमारी ही तृप्ति के लिये हमारे ही शरीर का घात किया गया और ब्राह्मणों का पेट भरा गया। धिक्कार है

इस मायाचारी पूर्ण चतुरता को, कि जिसके उपदेश से असंख्य जीवों का अध:पतन होता है।

पृथ्वीनाथ! यह भी एक आश्चर्य है कि पेट भरायी किसी की और तृप्ति हो किसी को! परन्तु अज्ञानी मूर्ख लोग ऐसे ही निन्द्य उपदेश को सुनकर उसे तुरन्त मान लेते हैं और अपना अकल्याण कर लेते हैं। धिक्.. धिक्.. अनन्त बार धिक्कार!

❖ ❖ ❖

श्रीमान्! उस समय अग्नि की तीव्र वेदना से हम दोनों के अर्थात् भैंस और बकरे के प्राण एक साथ निकले, जिससे वहाँ से उज्जैनी के निकट मातंग भीलों के नगर के बाड़े में मुर्गी के गर्भ में उत्पन्न होकर, फिर दोनों बालक नवीन कुल के धारक अण्डे में से बाहर निकले।

राजन! हम दोनों के जन्म होने के बाद हमारे पिता मुर्गा को बिलाव ने ऐसा पकड़ा कि उसके गले की हड्डी टूट गयी और वह मर गया। तत्पश्चात् थोड़ा काल व्यतीत होने के बाद हमारी माता को भी बिलाव खा गया। अब हम दोनों बालक उस भील के अमनोज्ञ घर के आँगन में विचरने लगे। उस समय घर की मालिकन को हमारी आवाज सहन नहीं हुई, उसने एक हड्डी के टुकड़े से हम दोनों के पैर तोड़ दिये। इतने से भी उसे शान्ति नहीं हुई तो उसने हमारे – दोनों मुर्गों के – पैर बाँधकर माँस लिप्त और कलेवर पूर्ण घर में चमड़े से बने हुए ढक्कन के नीचे बन्द कर दिया। उस समय उदयागत कर्म फल भोगते हुए उस घर में समय व्यतीत करने लगे।

नृपवर! पूर्व में जब मैं यशोधर नामक मण्डलेश्वर राजा था

और उस समय मैंने जिस प्रकार से अनेक नृपगणों को बन्दी बनाकर कारागृह में डाला था, उस कर्म का यह फल प्राप्त हुआ कि भील के दुर्गन्धयुक्त घर में पैर बाँधकर हम दोनों को रखा गया।

पृथ्वीनाथ! यह जीव जिस समय दूसरे जीव को दुःख देते हुए कुत्सित कर्म करता है, उस समय उसे इस बात किंचित् भी विचार नहीं होता कि इस दुष्कर्म का मुझे क्या फल प्राप्त होगा? परन्तु जब उस कर्म के फल को भोगता है, उस समय विचार उत्पन्न होता है कि मैंने पूर्व अवस्था में जो अशुभकर्म किये थे, उनसे असंख्यात गुणित दुःखों का पात्र बनना पड़ा। उस समय पश्चाताप करता है कि अरे! यदि पूर्व दशा में मैंने पापकर्म न किया होता तो यह दुःख सहन नहीं करना पड़ता!

—इत्यादि अनेक प्रकार से जीव पीड़ित होते हैं, उसी प्रकार से हम दोनों मुर्गे भील के घर में पड़े-पड़े पश्चातापरूप अग्नि से संतप्त हो रहे थे। इस प्रकार शीत, उष्ण, पवन से पीड़ित और क्षुधा-तृषा से आसक्त भील के घर में रहते हुए दुःखों की परम्परा को प्राप्त हुए।

नृपवर! उस भील के घर में दुःसह्य कष्ट पड़ने से दुःखित अंग से हम अन्य प्राणियों के प्राण को पीड़ित करते हुए उन्हें भक्षण करने लगे। अब हम दोनों सुन्दर और तीक्ष्ण चोंच से भूमिगत सूक्ष्म जीवों का भक्षण करते हुए इधर-उधर घूमने लगे।

इस प्रकार भ्रमण करते हुए हम दोनों को कोतवाल ने देखा। प्रसन्नचित्त होकर भील द्वारा अपने नजदीक बुलाकर हमारे शरीर पर स्नेहपूर्वक हाथ फिराया तो हमें आनन्द हुआ। मानो कि पूर्व भव के पुत्र यशोमति के हाथ में ही हों!

नृपवर! एक दिन हम दोनों कोतवाल के दरवाजे के निकट क्रीड़ा कर रहे थे, इतने में दैवयोग से महाराज यशोमति की सवारी वहाँ से निकली। महाराज यशोमति हम दोनों को स्नेहपूर्ण नेत्रों से देखकर कोतवाल से कहने लगे कि 'ये दोनों मुर्गे शारीरिक लक्षणों की परीक्षा करने से अति उत्तम ज्ञात होते हैं, इसलिए इन दोनों बच्चों को घर के जल और अन्न से तृप्त करके इन दोनों का पालन-पोषण करो।

कोतवाल! जब ये दोनों युवा होंगे, तब अपनी सुन्दर चोंच और तीक्ष्ण नखों से शत्रु वर्ग का क्षय करेंगे। ये दोनों बालक यौवनारम्भ में अपने पैर के घात से पृथ्वी तल को खोदते, रक्तनेत्र करते, भृकुटि के विकार को प्रकाशित करते हुए जब युद्ध करेंगे, उस समय गमन करते हुए पथिकजनों के मन को मोहित करेंगे। उसी समय हम भी इनके युद्ध की कुशलता देखेंगे, इस कारण तुम इन्हें यत्नपूर्वक रखो।'

राजा का उपरोक्तानुसार आदेश सुनकर कोतवाल ने हम दोनों को अपने घर में रखा और जब रात्रि व्यतीत होकर प्रातः काल हुआ, तब पिंजड़े में रख दिया। हम दोनों को वन में जहाँ राजा उपस्थित था, वहाँ ले गया। उस रमणीक वन में महाराज यशोमति का रमणीक और स्वच्छ महल था। जिसके अवलोकन से ऐसा ज्ञात होता था कि मानो देव-विद्याधरों ने रमण करने के लिये मायामयी महल बनाया है। हम दोनों को उसके आँगन में पिंजड़े में रखा गया।

नृपवर! भविष्य के अनुसार उस चोर निवारक, परस्त्री लम्पटी और विघ्नस्वरूप तथा हिंसा में प्रवर्तक कोतवाल ने अशोकवृक्ष

के नीचे प्रासुक शिला पर ध्यानारूढ़ विराजमान एक मुनिराज को देखा।

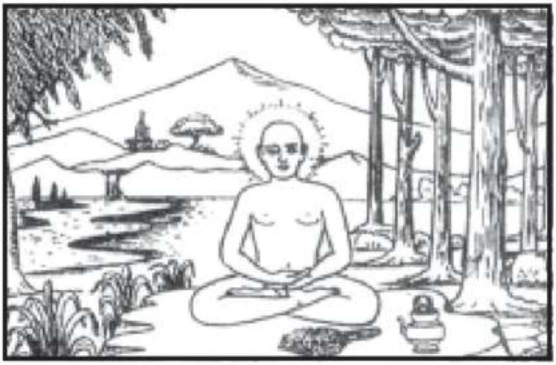

वे मुनिराज इसलोक और परलोक की आशारूप बन्धन से रहित; राग-द्वेषादि दोषों से विरक्त; शुभ मन-वचन-काय इन तीनों योग-युक्त; अशुभयोग से विरक्त; माया निदान और मिथ्यात्व इन तीन शल्यों के नाशक; तीन लोक के विजेता; कामदेव का खण्डन करनेवाले; तीन लोक का मण्डन करनेवाले; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप त्रिरत्नों से विभूषित; क्रोध-मान-माया-लोभरूप कषाय चतुषक का नाश करने के लिये अग्नि के समान; आहार-भय-मैथुन-परिग्रह, इन चार संज्ञाओं से दूर; पंच समिति के परिपालक तथा सत्तावन आश्रवों के अर्थात् पाँच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पच्चीस कषाय, पन्द्रह योग के निरोधक थे।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—ऐसे पाँच महाव्रतों के भार को सहन करने में धुरन्धर; पंच परमेष्ठी के भाव के प्रकाशक; पंच परमेष्ठी में पंचम पद के धारक; साधुओं के नायक; पंचम गति मोक्ष के विधायक; पाँच आचारों के धारक; त्रस और स्थावर जीवों की दया में अति तत्पर थे।

वे मुनिराज सात भयरूपी अन्धकार के नाश के लिये सूर्य समान; आठ मद दूर करने में आदरयुक्त; सिद्ध के आठ गुणों में

तल्लीन; नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य के धारक; आत्मा के ज्ञाता; उत्तम क्षमादि दस धर्मों के प्रतिपालक तथा पाँच इन्द्रिय, तीन बल श्वासोच्छ्वास और आयु, इस प्रकार से दस प्राणधारी जीवों के रक्षक इत्यादि अनेक गुणों के भण्डार थे। ऐसे परम शान्त मुनिराज को उस कोतवाल ने देखा। उन नग्न मुद्राधारक परम दिगम्बर शान्तमूर्ति श्री आचार्यवर को देखकर क्रोधित होते हुए कोतवाल विचार करने लगा कि इस दुष्ट गर्विष्ट, पापिष्ट, मलिन गात्र और क्लेशित नग्न मुनि ने इस अति उत्तम स्थान को अपवित्र किया है, साथ ही महा-अपशकुन किया है; इस कारण महाराज यशोमति के मनोरंजक स्थान से इस श्रमण को अवश्य बाहर निकालूँगा परन्तु इस समय उदासीनभाव से रहनेयोग्य है। फिर थोड़ा इन्तजार करने के बाद ऐसा अटपटा प्रश्न करूँगा कि जिसका उत्तर ही नहीं बने, तत्पश्चात् मैं तुरन्त ही मूर्ख बनाकर इस वस्त्ररहित को निकाल दूँगा।

इस प्रकार विचार करके उस मायावी / कपटी यमराजतुल्य कोतवाल ने मुनिराज को साष्टांग नमस्कार किया। मुनिराज का ध्यान पूर्ण होने से, यद्यपि मुनिराज को परिज्ञान हो गया था कि यह अभक्त दुष्ट चित्त है, तथापि मुनिराज ने उसे जिनेन्द्र कथित धर्म की वृद्धि हो - ऐसा आशीर्वाद प्रदान किया।

जिन्हें तृण और कंचन समान हैं—ऐसे महा ऋषीस्वर, निन्दकों के प्रति मात्सर्यभाव नहीं करते और प्रशंसकों में हर्षित नहीं होते। उन महामुनियों के लिए तो शत्रु-मित्र में समदृष्टि होती है अर्थात् वे तो वीतरागपरिणति के धारक होते हैं।

कोतवाल ने कहा—'ऋषीवर आपने जो धर्मवृद्धिरूप

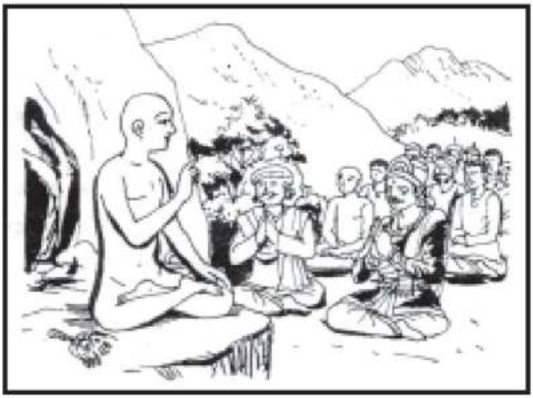

आशीर्वाद दिया, उसे मैंने शिरोधारण किया, परन्तु वीर योद्धाओं के मत में तो धनुष ही धर्म है तथा उसकी प्रत्यंचा, वह गुण और शत्रु के नाश के लिये जो बाण चलाया जाता है, वही मोक्ष है; इसके अतिरिक्त न कोई धर्म है, न कोई गुण अथवा न कोई मोक्ष है; इसलिए जब मोक्ष है ही नहीं तो मोक्षसम्बन्धी सुख किस प्रकार कहा जाये? इस कारण पंचेन्द्रिय के विषय में जो आनन्द है, वही सुख है और उस सुख को ही मैं सुखकर मानता हूँ।

मुनिराज! आप इस वन में निवास करके क्या कर रहे हैं? यह दुर्बल शरीर, उसमें भी वस्त्र नहीं, ओढ़ने का नहीं, पैर में पादुका नहीं, सिर पर पगड़ी नहीं, आपके तो आठों ही अंग क्षीण, खेदखिन्न और मललिप्त प्रक्षालरहित है, आँख कपाल के अन्दर घुस गयी है, रात-दिन एक निमेषमात्र भी नींद नहीं लेते, इस प्रकार आँख बन्द करके किसका ध्यान करते हो। इसमें तो हमारे जैसे मनुष्यों को भ्रान्ति उत्पन्न होती है। इस कृत्य में आपको क्या लाभ होगा? इससे तो उत्तम यह है कि इस व्यर्थ आडम्बर का त्याग करके विषय-भोगों का रुचिपूर्वक सेवन करो।'

मुनिराज ने अत्यन्त शान्तभाव से उत्तर देते हुए कहा—भाई!

जीव और कर्म, इन दोनों का विभाग करके परमात्मा में (स्वस्वरूप शुद्धात्मा में) लीन होकर अजर-अमर और शाश्वत् स्थान जो निर्वाण है, वहाँ जाने की अभिलाषा से बैठे हैं और उसी का ध्यान करते हुए तिष्ठ रहे हैं।

प्रियवर! तुमने जो इस दुर्बल मलिन और वस्त्ररहित शरीर की निन्दा की है तो इस संसार की चतुर्गति में परिभ्रमण करते हुए यह जीव स्त्री, पुरुष, नपुंसक, सौम्य, शान्त, क्रूर, यमदूततुल्य, राजा, प्यादा, सेवक, दीन, दरिद्री, रूपवान, कुरूप, धनवान, उज्ज्वल गात्र, नीच कुल, उत्तम गोत्र, बलहीन और अतुल बली भी अनेक बार हुआ है। इस भ्रमण -स्वभावी संसार में ऐसी कौन-सी पर्याय है, जिसे इस जीव ने धारण नहीं किया हो? इस संसार की गति अति विषम है।

भाई! इस चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण करते हुए यह जीव भयानक अरण्य में माँसाहारी क्रूर पशु हुआ; तृणभोजी तिर्यंच हुआ। तत्पश्चात् रत्नप्रभा आदि नरकों की भूमि में महा घात को सहन करनेवाला नारकी हुआ। फिर जलचर, स्थलचर, और नभचर तिर्यंच होकर पापाचारी देव हुआ; इस प्रकार जन्म-मरणरूप भँवर में अनादि से पड़ा है। रत्नत्रयरहित अनन्त शरीर धारण किये हैं। इस प्रकार जीते-मरते दुःखों को सहन करते और पापफल भोगते हुए अनन्तानन्त काल व्यतीत हुआ है।

कोतवाल! अनरक्षक संसार में जो-जो क्लेश मैंने सहन किये हैं, वे मैं जानता हूँ। इसी कारण इन्द्रियजनित सुख से विरक्त होकर भिक्षा भोजन करता हूँ, निर्जन वन में निवास करके मौनपूर्वक रहता हूँ, कदाचित् धर्म का उपदेश भी देता हूँ, मोह से

पृथक् होते हुए शयन भी नहीं करता।

साम्य जल से क्रोधाग्नि को शान्त करता हूँ, विनय से मान को भगाता हूँ, सरल भाव से कपट को दूर करता हूँ, सन्तोष से लोभ का तिरस्कार करता हूँ, हँसता नहीं, लीलाविलास नहीं करता, उद्वेग नहीं करता, तपाग्नि से मदन के वेग को भस्म करता हूँ, भयरहित होने से शोक नहीं करता, हिंसा-आरम्भ के आडम्बर से अति दूर रहता हुआ निज आत्मा के ध्यान में मग्न रहता हूँ। मैं स्त्री के अवलोकन में अन्धा, गीत सुनने में बहरा, कुत्सित तीर्थ में गमन करने में लँगड़ा और विकथा करने में गूँगा हूँ।

कोतवाल! जीव के आधारभूत जो शरीर है, वह यद्यपि अचेतन है, तथापि बैल द्वारा चलायी जाती गाड़ी की भाँति, चेतन द्वारा चलाया जाता शरीर, चेतन जैसा ही दिखता है। जैसे बैल के बिना गाड़ी नहीं चलती, उसी प्रकार पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड जो शरीर है, वह चेतन जीव के बिना नहीं चल सकता, तथापि जीव पृथक् है और शरीर पृथक् है —ऐसा विचार करके मैं दिगम्बर हुआ हूँ। इसलिए अन्य किसी की अभिलाषा नहीं करता परन्तु केवल मोक्ष की इच्छा करते हुए ध्यानारूढ़ होकर बैठता हूँ। मैं अरण्यवास करते हुए आर्त-रौद्र कुत्सित ध्यान से विरक्त होकर धर्मध्यान के योग से आत्मा का अवलोकन करता हूँ।

यद्यपि मैं शरीर की स्थिरता के लिये आहार ग्रहण करता हूँ परन्तु उसमें गृद्धता नहीं रखता तथा इन्द्रियों के बल का दमन करते हुए पापास्त्रवों का विसर्जन करता हूँ। इस दशा में जो आनन्द है, वह तीन लोक में कहीं नहीं है।'

कोतवाल ने कहा—'मुनिराज! आपने कहा, वह सत्य है

परन्तु देह और आत्मा को भिन्न कहते हो, वह योग्य नहीं है, क्योंकि जैसे गाय के सींग में से दूध नहीं आता और छत्र बिना छाया नहीं होती। इसी प्रकार शरीर के बिना मोक्ष नहीं होता। आप जो आत्मा को तपाग्नि से संतप्त करते हो, वह केवल क्लेश भोगते हो। इसलिए जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो तो अवश्य सुख प्राप्त होगा।

मुनिवर! जैसे फूल से सुगन्ध भिन्न नहीं है, उसी प्रकार आत्मा भी शरीर से पृथक् नहीं है परन्तु जिस प्रकार फूल का नाश होने से गन्ध का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार देह के नष्ट होने में आत्मा का अभाव हो जाता है। इसलिए देह को कष्ट देने में आत्मा कष्टयुक्त हो जाता है।'

मुनिराज ने मधुर सम्बोधनपूर्वक कहा—'कोतवाल! आत्मा और शरीर की भिन्नता प्रत्यक्ष है। जिस प्रकार चम्पा का पुष्प, तेल में डालने से उसकी सुगन्ध पृथक् हो जाती है परन्तु फूल बना रहता है, उसी प्रकार आत्मा, देह से भिन्न हो जाता है।'

कोतवाल बोला—'जब आप देह को आत्मा से भिन्न मानते हो तो देह में आते-जाते आत्मा को किसी ने देखा है? यदि देखा है तो आप ही कहो कि हमने आत्मा देखा है।

यह शरीर श्रोणित और शुक्र के घररूप गर्भान्तर में वृद्धि को प्राप्त होता देखते हैं, वहाँ अन्य जीव कहाँ से आ जायेगा?'

मुनिराज ने समाधान दिया—'हे कोतवाल! तुमने कहा कि जीव आता-जाता दिखता नहीं तो यह बात सत्य है कि आपने अमूर्तत्वगुण के सम्बन्ध से यथार्थतः जीव दिखायी नहीं देता, परन्तु दृष्टिगत न होने से क्या वस्तु का अभाव हो जाता है? कभी नहीं।

मित्रवर! जो शब्द दूर से आता है, क्या वह आँख द्वारा देखा जा सकता है? परन्तु कान द्वारा ज्ञात हो जाता है; इसी प्रकार संसार में अनेक योनियों में से आया हुआ जीव अपने सूक्ष्मत्वगुण के कारण दिखायी नहीं देता परन्तु उसका अभाव नहीं होता, वह अनुमान ज्ञान से अवश्य जाना जा सकता है।

उसका मुख्य कारण यही है कि विषय है, वे उसी इन्द्रिय द्वारा ज्ञात होते हैं। एक इन्द्रिय के विषय को दूसरी कोई इन्द्रिय नहीं जान सकती। जैसे नाक का विषय गन्ध है, वह कान, आँख, जीभ या स्पर्श द्वारा ज्ञात नहीं होता। जो स्पर्श इन्द्रिय का विषय स्पर्श है, वह जीभ, नाक, आँख और नाक द्वारा ज्ञात नहीं होता।

प्रियवर! यह तो मूर्तिमान पदार्थ का विधान कहा अर्थात् मूर्तिक इन्द्रियों का विषय भी मूर्तिक ही होता है और मूर्तिवन्त विषय को मूर्तिक इन्द्रियाँ ही ग्रहण कर सकती हैं परन्तु वे अमूर्तिक वस्तु को नहीं जान सकती।

कोटरक्षक! यह जीव नामक पदार्थ अमूर्तिक है। वह अमूर्तिक केवलज्ञान का ही विषय है अर्थात् जीवद्रव्य का अमूर्तिक केवलज्ञान द्वारा बोध होता है। इसलिए केवली भगवान उस अमूर्तिवन्त जीवद्रव्य को प्रत्यक्ष जानते-देखते हैं। इस प्रकार शरीरस्थ होने पर भी देह से पृथक् जीव नामक पदार्थ की सिद्धि है।'

कोटरक्षक—'मुनिश्रेष्ठ! यह बात तो मैंने मानी, परन्तु यह तो कहो कि इस जीव को अनेक योनियों में कौन ले जाता है?'

मुनिराज—'इस चैतन्य आत्मा को अनेक योनियों में ले

जानेवाला अचेतन कर्म है। वही जीव को चार गति में और चौरासी लाख योनियों में नाच नचाता है।

कोतवाल! इस लोक में कर्मोदय ही बलवान है। जिस प्रकार लोह चुम्बक द्वारा आकर्षित हुआ लोहखण्ड नाचने लगता है; उसी प्रकार जीव के राग-द्वेष आदि भावों का निमित्त पाकर पुद्गल परमाणु कर्मस्वरूप परिणमित होकर चार गतिरूप संसार में भ्रमण कराते हैं।

प्रियवर! यदि शरीर को ही आत्मा मानोगे तो शरीर जड़ होने से आत्मा को भी अचेतन मानना पड़ेगा और जब आत्मा अचेतन हुआ तो शय्यासन का स्पर्शन, अनेक रसों का स्वाद, अनेक गन्धों को सूँघना, अनेक शब्दों का सुनना और अनेक वर्णों का देखना किसे होगा? ऐसी देह को आत्मा मानना, सर्वथा विरुद्ध है, परन्तु देह स्थित होने पर भी आत्मा देह से भिन्न और ज्ञानी है।'

इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर कोतवाल ने अपने सिर पर हाथ रखकर मुनिराज की स्तुति करते हुए मुनिराज कथित वाक्यों को प्रमाणभूत जानकर उनका स्वीकार किया।

कोतवाल ने विनयपूर्वक कहा—'हे मदनभंजक! हे भट्टारक! हे जगत तारक! आप मुनिमार्ग का प्रतिपादन करो। मैं यथाशक्ति उसका परिपालन करूँगा।'

मुनिराज—'कोटरक्षक! तू सर्वज्ञ वीतरागी और हितोपदेशक ऐसे जिनराज कथित धर्म का सेवन कर, क्योंकि इसी धर्म से स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति होती है और यदि मनुष्य हो तो नारायण, बलभद्र, विद्याधरेश, चक्रवर्ती आदि पदवी धारक होता है। इस धर्म से धरणेन्द्र, इन्द्र और अहमिन्द्र पद प्राप्त होता है।

प्रियवर! इस धर्म के धारण करने से ही, जिनके चरण कमलों के दास इन्द्रादिक देव हैं, जिनका जन्माभिषेक क्षीरसागर के जल से करते हैं, ऐसा जिनेन्द्र पद प्राप्त होता है।

इसी धर्म के फल से मनुष्यपर्याय धारण करके उत्तम धनवान गृहस्थ होता है। वहाँ चन्द्रवदनी, करकमली, हंसगामिनी, कमलदल नेत्रा, सुगन्धमय श्वासोच्छ्वाससहित मनोहर और कौतुक उत्पादिका तथा अनेक वस्त्राभूषणों से विभूषित इत्यादि प्रकार से देवांगनातुल्य स्त्री रत्न की प्राप्ति करके सांसारिक सुखों को अनुभव प्राप्त करता है।

प्रियवर! इस संसार में धर्म के समान अन्य कोई मित्र नहीं है तथा उससे विपरीत पाप के समान दुःखदायक दूसरा कोई शत्रु नहीं है।

जो परजीव की हिंसा करता है अर्थात् अन्य जीव के प्राण को दुःख देता है, वह पापी गिना जाता है और उसी पाप के फल में वह जीव चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण करते हुए कुयोनियों के असंख्य दुःखों का पात्र बनता है।

कोटरक्षक! जो हिंसक है, वह संसार वन में भटकते हुए किसी पुण्ययोग से मनुष्य पर्याय धारण करता है तो दुःखी, दरिद्री, हीन, मलिन गात्र, दुर्बल, रूक्ष हस्तपाद आदि दुर्गन्धयुक्त वक्र शरीर, महाघृणित, लोगों की जूठन से जीवन व्यतीत करनेवाला और मलिन तथा फटे हुए वस्त्रों से आयुपर्यन्त दुःख भोगते हुए काल व्यतीत करता है।

जो महाहिंसादि पापकर्म से यदि मनुष्यपर्याय में स्त्री हो तो मलिन गात्रा, जार पुरुषों से रमण करनेवाली परपुरुषासक्ता,

व्यभिचारिणी, परधन हरण करने में प्रवीण, पीत नेत्रा, रूक्ष केशवाली, शुष्क कपोलता, भग्नस्तनी, दुर्भाग्यनी, दुष्टनी, कुलमार्ग से भ्रष्ट, कठोर, धीठ, निर्लज्ज, पापकर्म में लीन, स्नेहरहित, दुर्गन्ध शरीर, प्रबल काल समान क्लेशी, शोभारहित, दारिद्र्य पीड़ित, कठोर और कर्कश बोलनेवाली होती है।

पापकर्म से कदाचित् गृहस्थ भी हो तो उपरोक्त गुण विशिष्टा स्त्री, महामूर्ख अनेक पुत्रसहित स्वयं गरीब होता है और कदाचित् किसी से कुछ मिले तो उसमें भी खली और छिलकों से पूरे घर का पेट भरना पड़ता है।

जहाँ-तहाँ बालक रोते फिरते हैं, उसका नाक बहता है, घर में कहीं फूटे हुए बर्तन पड़े हैं, कहीं से कुछ माँगकर लाये हुए पुराने फटे हुए वस्त्र पड़े होते हैं, जिन्हें कोई परिवार सहायक नहीं होता, घर भी ऐसा होता है कि तृण से आच्छादित और हजारों छिद्रवाला होता है।

अधिक कहाँ तक कहना! इस संसार में जो मात्र दुःख है, वह सब पापरूप वृक्ष का फल है और वह पाप भी परपीड़ा से ही है।

कोतवाल! इस प्रकार जानकर, जैसे बने वैसे, जिसमें जीव का वध न हो, ऐसा धर्म करो।'

कोतवाल ने पूछा—'हे मुनिराज! हमारे गुरु इस प्रकार कथन करते हैं कि जो पुरुष, पशुओं का घात करके माँस खाता है, वह निश्चय से स्वर्ग में असंख्य काल तक सुख भोग करता है।'

मुनिराज ने कहा—'महाशयवर! जो निश्चित शुद्धज्ञान है,

वह इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय है तथा वही ज्ञान जीव का निजस्वभाव है, वह पराधीन नहीं। अतीन्द्रियज्ञान के धारक श्री केवली भगवान ने जो प्रतिपादन किया है, वह सर्वथा सत्य है। उसमें लेशमात्र भी अन्यथा नहीं है।

क्योंकि वस्तुस्वभाव के यथार्थ कथन में प्रथम तो सर्वज्ञ होना चाहिए और कदाचित् सर्वज्ञ हो और राग-द्वेष से मलिन हो तो भी वह यथार्थ नहीं कह सकता; इसलिए जो वीतराग और सर्वज्ञ है, वही हितोपदेशी है, वही आप्त है, उसका कहा हुआ वचन प्रमाण है।

मित्रवर! आप्त भगवान ने चैतन्यगुण विशिष्ट अमूर्तिक जीव का जैसा स्वरूप प्रतिपादित किया है, उसे इन्द्रियजनित ज्ञान का धारक स्वप्न में भी नहीं जान सकता **क्योंकि जो इन्द्रियजनित ज्ञान है, वह मूर्तिक है। वह मूर्तिक ज्ञान, अमूर्तिक आत्मा को जाननेवाला किस प्रकार हो सकता है?**

कोटरक्षक! तेरा जो देव है, वह इन्द्रियजनित ज्ञान का धारक है, इसलिए वह इन्द्रियजनित ज्ञान से वस्तुस्वभाव को जन्मान्तर में भी जान-देख नहीं सकता। जिस प्रकार मदोन्मत्त, मूर्च्छावान और शयनस्थ पुरुष के मुख में श्वान पेशाब कर जाये और उसे पता नहीं पड़ता। इसी प्रकार अतीन्द्रियज्ञान से रहित छद्मस्थ ज्ञाता त्रैकालिक वस्तु को कभी भी नहीं जान सकता।

यदि मीनभक्षी बगुला ही पूज्य पद को प्राप्त हो जायेगा तो छह काय के जीवों के रक्षक, संयम के प्रतिपालक और समभाव से युक्त मुनियों की क्या दशा होगी? अर्थात् उनकी वन्दना-पूजा कौन करेगा?

कोटरक्षक! तुम ही मन में विचार करके देखो कि नदी के किनारे निवास करके मछलियों का खानेवाला बगुला किस प्रकार पवित्र हो सकता है? इस प्रकार जो जिह्वा लम्पट माँसभक्षी हैं, वे पूज्य किस प्रकार हो सकते हैं?

पापकर्म के उदय से बकरी, हिरणी और गाय आदि पशु जाति समस्त तृण भोजी है तथा वे किसी जीव के घात में प्रवृत्तिमान नहीं होते। उन दीन पशुओं का घात करके अपने को उच्चकुली और पवित्र मानकर भोले जीवों से अपनी पूजा कराये और कहे कि हमें परमेश्वर ने इसके लिये उत्पन्न किया है कि हम चाहे जैसा नीच कर्म करें, तो भी पूज्य हैं और जो हमारी निन्दा करता है, वह जहाँ तक सूर्य-चन्द्र है, वहाँ तक नरकवास करता है तथा जो हमारे वचनों में दूषण लगाता है, वह वैतरणी का पानी पीता है, इसलिए हमारा कहा हुआ जो वाक्य है, वह जनार्दन भगवानतुल्य है। कहाँ तक सत्य है?

भव्यवर! अब तू वेदमार्ग को त्यागकर श्री ऋषभदेव आदि तीर्थनाथ द्वारा प्रकाशित धर्म को अंगीकार कर। श्री ऋषभदेवस्वामी ने दयामय धर्म का प्ररूपण करके, फिर वह दयामय धर्म मुनि और गृहस्थ के भेद से दो प्रकार से प्रतिपादित किया है।

उसमें पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति, इन तेरह प्रकार के चारित्र से युक्त मुनिधर्म महा दुर्धर है तथा पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत - इस प्रकार बारह व्रतरूप श्रावकधर्म है, उसका तुम पालन करो क्योंकि श्रावकधर्म में एकदेश हिंसा का त्याग है। इसलिए तुम हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील सेवन और परिग्रह की तृष्णा-इन पाँच पापों का एकदेश

त्याग करके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदार सन्तोष, और परिमाण- इन पाँच अणुव्रतों को धारण करो।

पुरुषोत्तम! उपरोक्त व्रत के अतिरिक्त रात्रिभोजनत्याग, मधु, माँस और मदिरा - ये तीन मकार तथा ऊमर, कठुम्बर, पीपल का फल, और बड़ का फल तथा पाकर - इन पाँच उदम्बर फलों का त्याग करना। दसों दिशाओं में गमन का प्रमाण और भोगोपभोग की संख्या निश्चित करके आठ मद का त्याग करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अन्य कुशास्त्रों का त्याग, वर्षाकाल में गमन का निषेध, प्राणघातक आजीविका का त्याग करके, अपने शस्त्र किसी को नहीं देना चाहिए।

अष्टमी और चतुर्दशी के दिन स्त्री का स्पर्श नहीं करना तथा उपवासपूर्वक एकान्त निर्जन स्थान में वास करना अथवा एक बार और नीरस आहार करना चाहिए।

हे कोटरक्षक! प्रत्येक पर्व के दिन में उपवास अथवा धर्मध्यानपूर्वक श्री जिनमन्दिर में बैठकर पापों का त्याग करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त पात्रदान करना अर्थात् सम, दम, व्रत, नियम आदि का पालन करनेवाले उत्तम मुनि उत्तम पात्र; सम्यग्दृष्टि श्रावक मध्यम पात्र तथा अविरति सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र-इन तीन प्रकार के पात्रों के लिये औषध, शास्त्र, अभय और आहार - इन चार प्रकार का दान सत्कारपूर्वक देना चाहिए।

इस प्रकार दान करने से उत्तम पुण्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। पश्चात् पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि में द्रव्य का व्यय करना और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय का निरन्तर

आराधन करना तथा त्रिकाल सामायिक करना चाहिए।'

मुनिराज के ये वचन सुनकर कोतवाल कहने लगा—'हे मुनिश्रेष्ठ! हमारे कुल में जीवों का वध प्रथम है, इसलिए इस जीव घात के अतिरिक्त अन्य जो धर्म सम्बन्धी क्रम वर्णन किया है, वह मैंने ग्रहण किया।

हे मुनिपुंगव! मैं नगर का श्रेष्ठ कोतवाल हूँ, इसलिए जीवों का वध करना और कारागृह में बन्द करना, वह मेरा प्रथम कर्तव्य है; इसलिए इस व्रत को मैं पालन नहीं कर सकता।

हे आचार्यवर! मेरे पितामह, प्रपितामह और पिता के समय से जीव के वध का क्रम चालू है, इसलिए क्रम से मैं बँधा हुआ हूँ; इसलिए इस व्रत को मैं ग्रहण नहीं कर सकता परन्तु अन्य समस्त ही धर्म ग्रहण करता हूँ।'

मुनिराजश्री ने कहा—'हे कोतवाल! अधिक कहने से क्या लाभ? यह देख! तेरे बगल में जो मुर्गा युगल बैठा है, उन्होंने जिस प्रकार संसार परिभ्रमण करके महान कष्ट सहन किये हैं, उस प्रकार से तू भी करेगा!'

कोतवाल—'हे दिगम्बरेश! इस मुर्गेयुगल के भवभ्रमण की कहानी का आप वर्णन करें, जिसे सुनकर मुझे सम्बोधन प्राप्त हो।'

मुनिराजश्री ने कोतवाल की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा—महाराज यशोधर और उनकी माता चन्द्रमति ने अत्यन्त कुसंगति के योग से कर्कशभाव उत्पन्न किया, जिससे कृत्रिम मुर्गे को मारकर कुलदेवी को बलिदान किया।

हे कोतवाल! मिथ्यात्व के योग से ये दोनों निज धन और शरीर का त्याग करके महा भयभीत होते हुए क्षुधातुर मयूर और श्वान हुए। फिर वापिस मरकर मत्स्य और शंशुमार हुए। वहाँ से प्राण विसर्जित कर बकरा-बकरी हुए। तत्पश्चात् बकरा और मरीच हुए। वहाँ प्राण त्याग करके नवीन पुच्छ के सहेरासहित मुर्गा युगल हुए जो तेरे बगल में बैठे हुए हैं। इस प्रकार श्रीमुनि द्वारा मुर्गा युगल के भवभ्रमण का संक्षेप कथन सुनकर कोतवाल ने समस्त कुलधर्म का त्याग करके श्रावक के व्रत ग्रहण किये। तत्पश्चात् मन-वचन-काया से श्रीमुनिराज को भावसहित नमस्कार किया।

❖ ❖ ❖

यह कथा सुनकर क्षुल्लक महाराज ने कहा—राजन! जिस समय मुनिराज ने हम दोनों मुर्गों के भवभ्रमण का वर्णन किया, वह सुनकर हर्षपूर्वक हम दोनों जीवदया का परिपालन करके अपूर्व लाभ के योग से अत्यन्त सन्तोष को प्राप्त हुए। तत्पश्चात् हमने उत्कण्ठापूर्वक जहाँ मधुर शब्द का उच्चारण किया, वहाँ तुरन्त ही उसे सुनकर मैथुन कर्म में उपस्थित मेरे पुत्र यशोमति ने धनुष में बाण लगाकर अपनी पत्नी कुसुमाबली से कहा—

'प्रिय! अभी तुझे शब्दबेधी धनुर्वेद दिखाता हूँ।' इस प्रकार कहकर राजा ने बाण चला दिया, जिससे पिंजड़े में स्थित हम दोनों का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया और हम दोनों मरण को प्राप्त हुए।

राजन! हम दोनों मुर्गा उस तीक्ष्ण बाण द्वारा मरकर जन्मान्तर के पुत्र यशोमति की कुसुमाबली के गर्भाशय में उत्पन्न हुए।

नृपवर! पापों की परम्परा से मैं अपने पुत्र का पुत्र और मेरी माता चन्द्रमति अपने पौत्र की पुत्री हुई। मेरा जीव तो अभयरुचि-

कुमार नामक पुत्र और मेरी माता का जीव अभयमति नामक पुत्री हुई।

पृथ्वीनाथ! हम दोनों भाई-बहिन, काम की शक्ति समान रूप-लावण्ययुक्त चन्द्रकला समान वृद्धिगत होने लगे। हम दोनों कला, गुण से प्रवीण निज सौजन्यता और विनय-गुण से समस्त कुटुम्बीजनों का मन हर्षित करते हुए आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

कालान्तर में हमारे पिताश्री ने युवराज पद का पट्ट मेरे मस्तक पर आरोहण करके स्वयं शिकार करने के लिये पाँच सौ कुत्ते और अनेक शस्त्रधारी सुभटों को साथ लेकर महावन की ओर गमन किया। वहाँ मार्ग में रमणीक उपवन में एक वृक्ष की तलहटी में प्रासुक शिला पर उग्र तप के भार से क्षीण काय और कामदेव के विदारक सुदत्त नामक भट्टारक को देखा।

राजा यशोमति चिन्तवन करने लगे कि सिद्धि के विनाशक अपशकुन करनेवाले ये साधु कहाँ से आये? ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों से बाह्य ये मेरे द्वारा मारे बिना कहाँ जायेंगे? ऐसा विचार कर उस जन्मान्तर के पुत्र और वर्तमान के पिता यशोमति ने मुनि को मारने के लिये बिजली के वेग समान और पवन वेगतुल्य तीक्ष्ण नखोंयुक्त पाँच सौ कुत्ते उन वीतरागी मुनिराज पर छोड़ दिये।

वे कुत्ते ऐसे ज्ञात होते थे कि मानो मृगादि जीवों को मारने का शस्त्र ही हो। उन कुत्तों की वक्र पूँछ पापियों के चित्त समान, जीभ हिंसारूप वृक्ष के पल्लव समान और नख हिंसारूप वृक्ष के अंकुर समान दृष्टिगत होते थे।

वे हिरणों के विदारक कुत्ते, श्री मुनिराज के तप की सामर्थ्य से मुनिराज के निकट जाकर उनके चरणों में नमस्कार करके विनयपूर्वक चरण के समीप बैठ गये।

जब कुत्तों को छोड़ना निरर्थक हुआ, तब राजा यशोमति स्वयं खड्ग लेकर श्रीमुनिराज को मारने हेतु उद्यत हुआ। उस समय कल्याणमित्र नामक राजश्रेष्ठी, जो कि मुनिराज के निकट बैठे हुए थे, उन्होंने राजा यशोमति और मुनिराज के बीच आकर विनयपूर्वक कहा—'राजा मनुष्यों की पीड़ा को हरनेवाला होता है, तो यदि राजा ही व्रतयुक्त यतिश्वर को मारेगा तो विंध्याचल पर्वत पर वास करनेवाले भीलों की क्या दशा होगी? अर्थात् विंध्याचल पर्वत पर वास करते हुए भीलजन, मुनि की हत्या में प्रवर्तते हैं, परन्तु राजा तो मुनिराज की रक्षा करता है और यदि राजा ही मुनि हत्या में प्रवर्तमान होगा तो भीलजन क्या करेंगे?

इस कारण हे प्रजा पालक! मुनिराज की हत्या से निवृत्त होकर पवन, वरुण, वैश्रवण द्वारा स्तुति करनेयोग्य और विषयों से विरक्त इन श्री मुनि पुंगव को नमस्कार करना ही योग्य है।'

राजा यशोमति ने कहा—'कल्याणमित्र! जो नग्न है, स्नानरहित है, वह अमंगल और कार्य का विनाशक है, उसे मारे बिना कैसे छोड़ सकता हूँ? मुझे यमराज की आज्ञा का पालन करना पसन्द है और तू कहता है कि मैं नमस्कार करूँ, तो मैं प्रणाम किस प्रकार करूँ? क्योंकि जो अयोग्य है, उसका विनय करना वेदमार्गी द्वारा नीति विरुद्ध है; इस कारण इसे अवश्य मारूँगा।'

कल्याणमूर्ति ने समझाते हुए कहा—'श्रीमान्! यदि नग्नता ही अमंगल है तो नग्न और धूल से धुसरित शरीर महादेव तथा

कैची हाथ में लेकर नग्न मूर्ति क्षेत्रपाल भी है। इसके अतिरिक्त अरुण चरणों में घुँघरू बाँधकर लोहखण्ड का कड़ा हाथ में लेकर अस्थि के आभूषण पहनी हुई मनुष्यों के माँस को खानेवाली, हाथ में कपला और श्मशान में वास करनेवाली नग्न शरीरा योगिनी किस प्रकार मंगल हो सकती है? क्योंकि जो जीवदया के घातक और हिंसा का स्थान हो, वह मंगल नहीं होता।

नृपवर! जो जीवदया के प्रतिपालक, संयम के धारक साधु भट्टारक नग्न-दिगम्बर हैं, वे अमंगल नहीं परन्तु सच्चे मंगल वे ही हैं। जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आभूषणों के धारक और नग्न हैं, उन्हें दूषण लगाने से पापार्जन होता है।

पृथ्वीपति! तुमने स्नानरहित मुनि को निन्दारूप वचन कहा तो यज्ञ कर्म में स्नान कहाँ है? जिस प्रकार क्षारद्रव्य से वस्त्र मलरहित हो जाता है, इसी प्रकार मल से भरे हुए घट समान यह शरीर, स्नान करने से शुद्ध नहीं होता। स्नान करने से, सुगन्धादि लेप और पुष्पमाला आदि धारण करने से देह पवित्र और निर्मल नहीं होती परन्तु शरीर के संयोग से सुगन्धादि विलेप अपवित्र हो जाते हैं।

यह शरीर क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह आदि से पूर्ण है, यह सप्त धातु-उपधातुमय अपवित्र है, तथापि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप से पवित्र हो जाता है।

हे राजन! दुद्धर तप के धारक ऋषियों का सर्वांग पवित्र होता है, क्योंकि उनकी लार का रस और शरीर का मैल भी रोग का नाश करता है।

नृपवर! जिन ऋषीश्वरों के चरणों की रज ही पापरूप पंख का नाश करती है, इस कारण उन ऋषीश्वरों को ईर्ष्यारहित

प्रणाम करना ही सर्वथा योग्य है, क्योंकि जिन मुनिश्वरों को आमर्षोषधि, श्रेष्ठखिल्लोषधि, विडोषधि, अक्षीणमानसऋद्धि, और सर्वोषधि के प्रभाव से सर्प नहीं डसते तथा सिंह, शार्दूल, भील, पुलिन्द आदि दुष्ट जीव भी विनय से प्रणाम करते हैं।

यदि वे मुनि पुंगव रोष (क्रोध) करें तो इन्द्र का भी स्वर्ग में से पतन करें और मेरुसहित तीन लोक को पलट डालें! तीन लोक में ऐसा कौन सा बलवान तेजस्वी पुरुष है जो ऋद्धियुक्त श्रीमुनि के सन्मुख रह सकता है

प्रजापालक! इन महाशक्ति के धारक श्रीमुनि प्रणाम करनेयोग्य सज्जनों से प्रसन्न नहीं होते और जो निन्दा करता है, उसके प्रति द्वेष नहीं करते परन्तु शत्रु और मित्र दोनों से समभाव रखते हैं। इन महामुनि को शत्रु, मित्र, तृण, कंचन, गृह-श्मशान, और धूल तथा रत्न में समभाव है। ऐसे शान्तचित्त तपोनिधि महामुनि पर खड्ग उठाना कहाँ तक योग्य है?

ये महामुनिवर समस्त परिग्रहरहित, समस्त जीवों के उपकारी हैं, जिनका प्रभाव श्रावकों के अतिरिक्त देवेन्द्रों पर भी पड़ता है। नृपेश! तुम भी प्रत्यक्ष देख रहे हो कि महाक्रूर स्वभावी, हिंसक पाँच सौ श्वान आपने महामुनि को मारने के लिये छोड़े थे, परन्तु श्री मुनिराज के प्रभाव से वे शान्तचित्त होकर विनयवान शिष्य की भाँति मुनिराज के पादमूल में पूँछ हिलाते हुए बैठे हैं।

राजन! अज्ञान अवस्था और क्रोध से विमुक्त होकर श्री साधु के चरणों की वन्दना करो।'—इत्यादि कहकर कल्याणमित्र सेठ ने श्री मुनिराज का अधिक परिचय प्रदान करते हुए कहा कि—

❖ ❖ ❖

'गुणों के समूह की निधि कलिंग देश के सुदत्त राजा, सुकुमाल चोर के बन्धन और वधन से उदास होकर परम यति हुए हैं।

जिस समय सुकुमाल चोर को बन्धन में डालकर कोतवाल ने राजा सुदत्त के सन्मुख उपस्थित किया, उस समय राज कर्मचारीगण श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने नृपति विज्ञप्ति की—'हे स्वामी! इस अपराधी चोर को हाथ, पैर और मस्तक छेद का दण्ड देना चाहिए।' ऐसा सुनकर राजा को संसार, देह, भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो गया।

यह सुदत्ताचार्य महाराज! तृणवत राज्य का परित्याग करके परम दिगम्बर होकर गिरि और वन के वासी हुए हैं।'—ऐसा कहकर कल्याणमित्र सेठ ने कहा—'हे राजन! यशोमते! अब रोषमुक्त होकर, हाथ जोड़कर श्री मुनि महाराज के चरणों में प्रणाम करो।'

इस प्रकार कल्याणमित्र के कल्याणरूप वचन सुनकर, समस्त जीवों में मैत्रीभाव धारण करके, श्री मुनिराज की महाभक्तिपूर्वक महाराज यशोमति ने पूज्य गुरुवर के चरणों में नमस्कार किया। तब श्री आचार्यवर ने धर्मवृद्धि हो ऐसे वात्सल्यपूर्वक अमृततुल्य वचन कहे।

यह सुनकर यशोमति नृप हृदय में चिन्तवन करने लगा कि ये मुनि महाराज सुमेरु समान अचल, पृथ्वी समान क्षमावान, समुद्र समान गम्भीर, दिनकर समान प्रतापी और चन्द्रमा समान सौम्य है।

ये श्री मुनि पुंगव संयम के पुंज, तप की शक्ति, माहात्म्य के सार, जिनवर की भक्ति के निवास, दया देवी के क्रिया के पर्वत,

क्षमारूप कमलिनी के सरोवर और साधुवृत्ति के भण्डार, जीवों की प्रतिपालना करते हुए विराजमान हैं। मैंने पापी कृतघ्नी दुष्टात्मा ने ऐसे महात्मा को मारने का संकल्प किया, यह अत्यन्त अयोग्य कार्य किया है।

राजा यशोमति विचार करने लगा कि इस दुष्ट चेष्टा का प्रायश्चित्त यही है कि मैं अपना मस्तक छेद करूँगा। इस प्रकार नृपति के हृदयस्थ आशय को जानकर श्री मुनि महाराज ने सुखदायक वचन इस प्रकार कहे—

'नरनाथ! यह क्या अशुभ चिन्तवन कर रहे हो? क्या भ्रमर के कुल सदृश केशसहित मस्तक के छेदने से ही प्रायश्चित्त होता है?—नहीं, नहीं... परन्तु अपनी निन्दा और गर्हा से भी प्रायश्चित्त होता है।'

विस्मित होते हुए राजा यशोमति ने कहा—'हे गुरुवर! आपने मेरे मन की गुप्त बात किस प्रकार जान ली?'

कल्याणमित्र—'राजन! आपके मन की बात श्री मुनिराज ने जान ली, इसमें क्या आश्चर्य है? श्री केवली भगवान तो लोकालोक सम्बन्धी त्रिकालवर्ती समस्त चराचर वस्तुओं को एक ही समय में जान लेते हैं।'

नृपति—(हाथ जोड़कर) 'हे ऋषिवर्य! मैं एक वार्ता आपसे पूछना चाहता हूँ, वह कृपा करके वर्णन करने का कष्ट करें।'

श्री मुनिराज—'नृपवर! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह पूछो। मैं जो कुछ जानता हूँ, वह कहूँगा।'

यशोमति—(मस्तक झुकाकर) 'हे मुनिराज! कृपा कर यह बतलाये कि मेरे पिता महाराज यशोधर अपनी मातासहित मृत्यु

पाकर कहाँ उत्पन्न हुए हैं?'

मुनिराज—'नरनाथ! तुम्हारे पितामह महाराज यशोर्ध जब सफेद बाल देखकर जिस समय वैराग्यभूषित होकर तुम्हारे पिता यशोधर को राज्य लक्ष्मी समर्पण करके स्वयं मदन का मद भंजन करते हुए तपश्चरण के योग से स्वर्ग में गये, उस समय यशोधर महाराज राज्यासन पर विराजित हो न्यायपूर्वक प्रजा पालन करने लगे।

राजन! एक दिन तुम्हारी कुलदेवी के लिये यशोधर और चन्द्रमति ने चूर्ण विनिर्मित मुर्गे का बलिदान किया। तत्पश्चात् विषमिश्रित भोजन करके मरण को प्राप्त होकर माता-पुत्र दोनों श्वान और मयूर हुए। वे दोनों तुम्हारे ही घर में वृद्धि को प्राप्त होकर श्वान द्वारा मयूर का मरण हुआ देखकर तुमने कुत्ते को मार दिया।

तत्पश्चात् तुम्हारे पिता यशोधर का जीव मयूर की पर्याय परित्याग कर नेवला और तुम्हारी दादी का जीव कुत्ते की पर्याय से भयानक सर्प हुआ। तत्पश्चात् दोनों परस्पर युद्ध करके पहले नेवले ने सर्प को मारा, पश्चात् नेवला भी मृत्यु को प्राप्त हुआ।

हे राजन! तत्पश्चात् तेरी दादी का जीव सर्प के शरीर का त्याग करके शिप्रा नदी में शंशुमार हुआ जो तेरी कुब्जिका दासी को मारने के अपराध में तूने मरवाया और तेरे पिता का जीव

नेवले की पर्याय से उसी शिप्रा में मत्स्य हुआ। शंशुमार की खोज करते समय धीवरों ने मत्स्य को भी पकड़ लिया, तत्पश्चात् वेदाभ्यासी भट्ट ब्राह्मणों के लिये पकाकर दिया गया।

नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार शंशुमार और मत्स्य दोनों मृत्यु को प्राप्त हुए। उसमें तुम्हारी दादी का जीव शंशुमार की पर्याय से वन में बकरी हुई और तेरे पिता का जीव मत्स्य की पर्याय से उसी बकरी के उदर से बकरा हुआ।

राजन! संसार की विचित्रता तो देखो! कि वह बकरा अपनी माता बकरी के साथ सम्भोग करके यूथ के स्वामी बकरा द्वारा मृत्यु को पाकर अपने ही वीर्य से अपनी माता के उदर में फिर से बकरा हुआ।

राजेश्वर! एक दिन तुम शिकार के लिये वन में गये थे, वहाँ कोई हिरण नहीं मिला, इस कारण वहाँ से वापिस आ रहे थे, तब मार्ग में बकरी और यूथपति बकरे का मैथुन देखकर क्रोधित होकर तुमने भाला से उन्हें मार दिया। इसलिए बकरी के उदर से जो बकरा निकला, उसे अजपालकों को सौंप दिया। उन्होंने उस बकरे का पालन-पोषण किया।

वह बकरी मरकर महा भयानक महिष (भैंसा) हुआ। उसने तुम्हारी सवारी का घोड़ा मार दिया, इसलिए तुमने उस भैंसे को जीवित जला दिया। तत्पश्चात् पक जाने के बाद उसका माँस समस्त ब्राह्मणों को खाने के लिये दिया।

उस समय तुम्हारी माता अमृतामति जो कि कुष्ठ रोग से व्याकुल थी, उसे भैंसे का माँस रुचिकर नहीं लगा, इसलिए रसोईदारों ने उसी बकरे का पैर काटकर तुम्हारी माता को तृप्त

किया; तत्पश्चात् बकरे को मारकर पितृजनों के श्रद्धा के लिये ब्राह्मणों को दिया गया।

हे नृप! तू स्मरण कर कि तूने उस बकरे और भैंसे का खण्ड-खण्ड करके श्रद्धा पक्ष में ब्राह्मणों को खाने के लिये दिया था या नहीं?

वे दोनों—बकरा और भैंसा—मृत्यु प्राप्त करके मुर्गा युगल हुए। नन्दन वन में उनकी आवाज सुनकर तुमने बाण से उन्हें मार दिया, जो मरकर तुम्हारी कुसुमावली रानी के गर्भ से उत्पन्न होकर अभयमती नामक कन्या और अभयरुचिकुमार नामक पुत्र हुए हैं।

राजन! इस प्रकार तेरे पिता यशोधर और तेरी दादी चन्द्रमति, ये दोनों मिथ्यात्व के योग से संसार भ्रमण करके, पुण्य के योग से तेरे पुत्र-पुत्री होकर तुम्हारे घर में बैठे हैं।

तुम्हारी माता अमृतादेवी निशाचारी समान माँस का भक्षण करनेवाली, गुणसमूह रूपी महाऋषीश्वरों की निन्दा करनेवाली, कुगुरु-कुधर्म-कुदेव की वन्दना करनेवाली, जीवित मत्स्य को तप्त घृत में पकाकर ब्राह्मणों को भोजन कराकर, पश्चात् स्वयं खाकर मदिरापान करके, जार के साथ रमण करके निजपति और सास को विष देकर मारनेवाली है, जिस कारण महा कष्ट से पीड़ित होकर आर्त-रौद्र ध्यान के योग से मरण को प्राप्त होकर छठवें नरक में महा दु:खों को सहन करनेवाला नारकी हुआ है।'

❖ ❖ ❖

क्षुल्लक महाराज—महराजा मारिदत्त! श्री सुदत्ताचार्य के मुख से मेरे भव सम्बन्धी चरित्र को सुनकर यशोमति महाराज

का शोकपूर्ण हृदय कम्पायमान हो गया तथा हृदयस्थ शोक सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर पश्चात् नयनमार्ग से अश्रुधारारूप से बाहर प्रवाहित होने लगा।

❖ ❖ ❖

यशोमति—(श्री मुनिराज के चरणों में गिरकर) 'स्वामिन! जिसने मेरे पिता का घात किया है, वह अवश्य निर्दयी और पापी है।

हे दयानिधे! हे करुणासागर! मैं शीघ्र पाप शत्रु का नाश करके अब किसी भी जीवमात्र से बैर नहीं करूँगा क्योंकि मेरे पिता यशोधर महाराज और दादी चन्द्रमति ने एक बार ही पिष्ठ निर्मित मुर्गे को कुलदेवी के सन्मुख बलिदान किया, जिससे संसार भ्रमण करके असंख्य कष्ट के भाजन हुए और दुष्ट-पापी मुझ द्वारा अनेक बार मारे गये।

हे मुने! मैं ऐसा मूर्ख हो गया हूँ कि मुझे इस बात का किंचित् भी ज्ञान नहीं रहा कि मेरे पूज्य पिता और पितामही का वध किस प्रकार करता हूँ?

सत्य ही है कि जिह्वा लम्पटी माँसभक्षी ब्राह्मणों के मिथ्या उपदेश से असंख्य जनसमूह नरक-निगोद के पात्र बन गये हैं।

स्वामी! जिस धर्मरहित तथा अधर्मयुक्त श्रद्धा लक्षण और यज्ञ धर्म प्ररूपक शासन में सर्वज्ञ नहीं, उस सम्प्रदाय में जीव दयारूप विवेक किस प्रकार हो सकता है? जिस धर्म में वनचर, नभचर और जलचर जीवों का वध करके उसे धर्म बतलाया गया है, उस धर्म में दया का नाम भी नहीं परन्तु अज्ञानता से निज कुटुम्बियों का भी वध किया जाता है।

हे नाथ! मैंने भी वेदाभ्यासी विप्रों के उपदेश से अनेक जीवों का वध किया, इतना ही नहीं; अपने पिता और पितामही के जीव का भी अनेक बार घात किया, वह देखने को कौन समर्थ है?'

इस प्रकार यशोमति महाराज, श्रीमुनि के सन्मुख पश्चातापरूप वचन कहकर, कल्याणमित्र सेठ से इस प्रकार कहने लगे—

'हे वागीश्वर श्रेष्ठिन्! आपने मुझ पर महान उपकार किया है। आपके संसर्ग से मैं मुनि-हत्या के महापाप से मुक्त होकर संसार-भ्रमण से भी रहित हो जाऊँगा। इसलिए समस्त परिग्रह का त्याग करके पाणिपात्र में आहार करूँगा।

श्रेष्ठीवर! आप श्री मुनिराज से मेरी ओर से निवेदन करो कि मुझ पर प्रसन्नचित्त होकर मुझे भगवती जिनेश्वरी दीक्षा प्रदान करें।

प्रिय बन्धु कल्याणमित्र! मैं तो जिन दीक्षा ग्रहण कर रहा हूँ और तुम नगर में जाकर समस्त नगर, राजकर्मचारीगण और अन्तःपुर निवासियों को सूचित कर दो कि यशोमति राजा ने जिनदीक्षा ग्रहण की है; साथ ही अभयरुचिकुमार को राज्य प्रदान किया है और केलिकन्द सदृश सुकुमार शरीरा मृगनयना अभयमतिकुमारी का अहिछत्र नगर के राजा के अरिदमन नामक पुत्र के साथ पाणिग्रहण करो।'

इस प्रकार महाराज ने उपरोक्त वार्ता कल्याणमित्र से कही, जो तत्काल बिजली के वेग की भाँति समस्त नगर में इस प्रकार व्याप्त हो गयी कि महाराज को बहुत ही उत्तम प्रकार के शिकार का लाभ प्राप्त हुआ अर्थात् श्री मुनि के दर्शन से धर्म का लाभ प्राप्त हुआ है।

उपरोक्त समस्त रहस्य नगरव्यापी होकर अन्त:पुर में भी पहुँच गया। उस समय रनवास में कोलाहल हो गया। समस्त रानियाँ विलाप करते हुए मस्तक और उरस्थल पीटती हुई नन्दनवन में जहाँ श्री मुनि महाराज के निकट यशोमति महाराज जिनदीक्षा के लिये उद्यमी थे, वहाँ आ पहुँचीं।

नख की प्रभा से मणियों की दिप्ती को तिरस्कार करती हुई और चलायमान हारों की मणियों से युक्त रमणियों ने महाराज यशोमति से इस प्रकार प्रार्थना की—

'हे स्वामिन! दैव ने लक्ष्मी सुख के घातक तपश्चरण द्वारा आपको ठग लिया है।

प्राणबल्लभ! आप स्वर्ग सुख के लिये तपश्चरण करते हो तो हम सब स्त्रियाँ अप्सरा हैं, सुन्दर मनोहर महल विमान हैं और प्रिय संगम है, वही सुख है।

यहाँ आपको स्वर्ग सुख से किस बात की कमी है, जो आप वर्तमान सुख का त्याग करके आगामी सुख की वांछा करके तपश्चरण के कष्ट को सहन करते हो?'

इस प्रकार धूर्ता स्त्रियों ने अनेक प्रकार के स्नेहरूप पाश्र्व से महाराज यशोमति को रोकने का प्रयत्न किया किन्तु राजा के

चित्त में कुछ भी असर नहीं हुआ और वे जिनदीक्षा के लिये दृढ़ चित्त रहे।

❖ ❖ ❖

क्षुल्लक महाराज, मारिदत्त राजा को सम्बोधन करते हुए कहते हैं—राजन! जब मुझे और मेरी बहिन अभयमति को इस समस्त वृतान्त के समाचार विदित हुए तो हम दोनों तुरन्त ही अनेक वाजिंत्रों के समूह से व्याप्त मदोन्मत्त हाथी पर चढ़कर नन्दन वन में जहाँ मुनिराज विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। हम दोनों भाई-बहिन ने यशोमति महाराज को समस्त राज्य परिकर ध्वजा और चाँवर से रहित तथा चारित्र रत्न के लिये हाथ फैलाकर जमीन पर सामान्य मनुष्य की तरह विराजित देखा।

नृपवर! उस समय हम भी वहीं बैठ गये। तत्पश्चात् श्री मुनिराज के मुख कमल से हमारे भवान्तर की कथा सुनकर हमें तुरन्त ही जातिस्मरण हो गया और हम दोनों उसी समय मूर्च्छायुक्त होकर जमीन पर गिर पड़े। उस समय हमारी माता स्नेह से मुग्ध होकर विलाप करने लगी।

दासियों ने तत्काल शीतलोपचार करके हम दोनों को सचेत किया। जैसे ही हमारी मूर्च्छा दूर हुई, हम दोनों ने श्री मुनिराज के पावन चरणों में वन्दन किया और उन्हीं के निकट बैठ गये।

नृपवर! उस समय मेरी माता कुसुमाबली मुझे मुनि चरणों के निकट बैठे हुए देखकर मेरा हाथ पकड़कर अपनी गोद में बैठाते हुए मुख चुम्बन करते हुए कहने लगी—'प्रिय पुत्र! तू क्यों उदासचित्त हो गया? तू तो अभी बालक है। तू इन बातों को क्या समझता है? उठ, घर चल। पिताश्री द्वारा प्रदान किये हुए राज्य का शासन सम्हाल' - इत्यादि वचन बोलती हुई अपनी छाती कूटकर विलाप करने लगी।

तत्पश्चात् विह्वल चित्त होकर मूर्च्छा से पृथ्वी पर गिर पड़ी, उस समय अन्त:पुर की समस्त रानियों ने अनेक प्रकार से शीतोपचार करके समझाया और इस प्रकार प्रिय वाक्य कहने लगीं—

पहली रानी ने कहा—'प्रिय बहिन! उठ, उठ। प्रिय वचन बोल। नाथ के कहे हुए वचनों को धारण कर। तूने मेरे दुर्भाग्य का तिरस्कार करके सौभाग्य दिया तो अब किसलिए विलाप करती है।'

दूसरी रानी ने कहा—'हे सखी! तू क्यों दु:खी होती है? तुमने मुझे वस्त्राभूषणों से भूषित करके भरतार के पास भेजा था तो अब भरतार तपश्चरण में तत्पर है, तब यदि तू ऐसा करेगी तो मेरी खबर कौन लेगा?'

तीसरा अन्य रानी इस प्रकार कहने लगी—'हे बहिन! क्यों दु:खी होती है? हे कल्याणरूपी! कल्याणरूप व्रत ग्रहण करने के लिये जाते हुए अपने पति का अनुकरण कर।'

उस समय कुसुमाबली महारानी अपने हृदय में विचार करने लगी - ये दोनों बालक, मुनिराजश्री के वचन श्रवण कर मूर्च्छित क्यों हो गये?

कुसुमाबली—'प्रिय पुत्र! मुनिराज तो अपने स्वच्छ ज्ञान द्वारा जगत के समस्त चराचर पदार्थों को जानते हैं। तुमने क्या जाना और देखा कि जिससे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर शयन करने लगे अर्थात् बेहोश हो गये?'

प्रत्युत्तरस्वरूप अभयरुचिकुमार ने कहा—'मातुश्री! हम दोनों ने मुनिराज के मुख कमल से हमारी भवावली का श्रवण किया है। उसका ही स्मरण हो जाने से हम दोनों मूर्च्छित हो गये थे क्योंकि ज्ञानी मुनि के वचन कभी भी अन्यथा नहीं होते।'

'प्रिय पुत्र! मुनिराजश्री ने तुम्हारे किस प्रकार के भवों का वर्णन किया है? वह सुनने की मुझे अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है, तो क्या तुम उनका प्रतिपादन कर सकोगे'—माता ने कहा।

अभयरुचिकुमार ने कहा—'माता! संक्षेप में कहता हूँ, वह तू सुन।'

❖ ❖ ❖

'अम्बिके! हम दोनों राजा यशोधर और चन्द्रमति थे। उस भव में आटे का मुर्गा बनाकर देवी के लिये बलि चढ़ायी। उस मिथ्या कर्म के प्रभाव से, विष मिश्रित भोजन के योग से, मरण प्राप्त करके मयूर और श्वान हुए। वहाँ से अरण्य में नेवला और सर्प; वहाँ से शिप्रा नदी में शंशुमार और मत्स्य; वहाँ से बकरा और बकरी; वहाँ से बकरा और भैंसा; वहाँ से मुर्गा युगल और वहाँ से चयकर तुम्हारे स्वच्छ उदर से पुत्र-पुत्री हुए हैं। इस कारण हे वर्तमान भव की माता! हे पूर्व भव की पुत्रवधू! अब तू श्री मुनिराज के चरणों में प्रणाम कर।'

इस प्रकार हमारे कहने से श्री मुनिराज को प्रणाम करके,

महाराज यशोमति के आदेश से, महाराज यशोमति और हमने नगर की ओर गमन किया। हमारे साथ सभी रानियाँ, राजा, कर्मचारी और कल्याणमित्र सेठ भी नगर में पहुँच गये।

❖ ❖ ❖

नगर में पहुँचकर कल्याणमित्र सेठ ने कहा—'प्रियभाई अभयरुचिकुमार! तुम्हारे पिता महाराज यशोमति तो जिनदीक्षा के लिये उद्यमी हैं। अब तुम इस सप्तांग राज्य का न्यायपूर्वक पालन करो और परिवारीजनों तथा अपनी माता को सन्तुष्ट करो।'

अभयरुचिकुमार—'श्रेष्ठीवर! यह यशोमति पूर्व भवान्तर में नेत्रानन्ददायक मेरा पुत्र था। उसे मैंने ही राज्यासन पर स्थापित किया था। अब इस भव में चन्द्रमा समान मैं उसका पुत्र हुआ हूँ। सेठजी! दैव ने कैसी उत्तम शिक्षा दी है?

श्रेष्ठीवर! अब तुम ही कहो कि दान क्रम को क्या मैं उल्लंघन करूँ? अर्थात् अपने हाथ से दिये हुए दान को वापिस ग्रहण करूँ?

अब तो मोह पटलरूप सघन वस्त्र से वेष्ठित स्नेहरूप पर्वत की गुफा का स्फुटन करके तपोलक्ष्मी का सुखावलोकन करूँगा।'

कल्याणमित्र—'प्रिय कुमार! अभी तपश्चरण का कहाँ समय है? इस समय तो तुम्हें सर्व प्रथम राज्य विद्या की शिक्षा लेना आवश्यक है क्योंकि राज्य विद्या बिना राज्य शासन करना दुसाध्य है और राज्य शासन बिना समस्त प्रजा अन्यायमार्ग में प्रवर्तन करने लगती है; इसलिए श्रावकधर्म और मुनिधर्म दोनों नष्ट हो जाते हैं। जब जिनराज कथित दोनों धर्म धरातल से पलायन कर जायें तो राजगृह में आपका जन्म लेना ही व्यर्थ हो गया! इसलिए राज्य करना परमावश्यक कर्म है।

क्षमा, इन्द्रियों का दमन, समभाव, सत्य और निर्मल शौच द्वारा ही जीव दया प्रतिपादित की गयी है। इसलिए पूर्ण दया के पालक मुनियों का धर्म, गृहस्थों से ही चलता है, यह मैंने निश्चित जाना है।

इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र और खगेन्द्रों द्वारा पूजित श्री भगवान सर्वज्ञ भासित जो धर्म है, वह राज्य शासन के बिना नष्ट हो जाता है।'

❖ ❖ ❖

अभयरुचिकुमार क्षुल्लक महाराज, मारिदत्त को अभी कहने लगे—नृपश्रेष्ठ! यद्यपि उस समय मैं संसार के दुःखों से अत्यन्त भययुक्त था, तथापि पिता द्वारा प्रदत्त पापरूप राज्य को अंगीकार किया ही।

राजन! जिस समय मेरा राज्याभिषेक हुआ, उस समय विविध प्रकार के रत्नजड़ित वस्त्र-आभूषणों से भूषित दिव्य अंगनाओं का समूह चाँवर ढोलता था।

अनेक प्रकार की शोभा और उत्सवसहित मेरे पिता यशोमति महाराज ने मेरा राज्याभिषेक किया। तत्पश्चात् मुझे और मेरी माता आदि समस्त कुटुम्ब को सम्बोधित करके वन की ओर गमन कर दिया। वहाँ मुनिराजश्री से

विनयपूर्वक प्रार्थना करके भव-भ्रमणनाशिनी दिगम्बर जिनदीक्षा अंगीकार कर ली।

नृपवर! मेरे पिता यशोमति ने जिस समय तपश्चरण ग्रहण किया, उसी समय अन्तःपुर की रानियों ने भी आर्यिका का व्रत ग्रहण कर लिया।

यशोमति महाराज ने दीक्षा ग्रहण करते समय अपने हाथ द्वारा केशलोंच किया, उस समय मानो अन्तरंग में से कृष्ण-नील लेश्या का तिरस्कार किया! जो वस्त्राभूषण और शस्त्रादि समस्त परिग्रह का त्याग किया, वह मानो अन्तरंग राग-द्वेष का ही परिहार किया।

नृपराज! मेरे पिता ने ऋषियों के चारित्र को ग्रहण करके घोर वीर तपश्चरण का आरम्भ किया। जो तपश्चरण जन्म-मरणादि व्याधियों का नाशक है, उसे ही धारण करके यशोमति मुनि, राग-द्वेष, मान-मत्सर आदि भावों का त्याग करके कर्मरूप पाप का नाश करने के लिये निर्जन वन, श्मशानभूमि और गिरिगुफा आदि में निवास करते हुए बेला, तेला, पक्ष, मासोपवास धारण करते थे।

गुणरूप मणियों से भूषित हमारे पिता ने घर के मोह का परित्याग करके, अपने मन को रोककर माया, मिथ्या और निदान,

इन तीन शल्यों का खण्डन किया तथा पाँच इन्द्रियों को दण्डित कर उन पर विजय प्राप्त की।

राजन! हमारे पिता यशोमति तो उपरोक्त प्रकार से तपश्चरण से अपने कर्मों को नष्ट करने लगे और मैं संसार से उदास तो था ही परन्तु पिता और कल्याणमित्र सेठ के आग्रह से यद्यपि मैंने राज्यभार ग्रहण कर लिया था, तथापि अपने मन की उदासीनता को कहाँ तक रोकता?

इसलिए कितने ही समय पश्चात् अति विनययुक्त अपने द्विमात भाई को कुल की लक्ष्मी से शोभित राज्यभार समर्पण करके उपशमभावसहित समस्त ग्राहारम्भादि कार्यों का त्याग करके मैं और मेरी बहिन अभयमति - दोनों संसार, देह भोगों से विरक्त होकर, जहाँ उद्यान में श्री दिगम्बर साधु विराजमान थे, वहाँ जाकर उन मुनिराजश्री को नमस्कार करके प्रार्थना की— 'स्वामिन! हमें जिनदीक्षा प्रदान करें।'

इस प्रकार हमारी प्रार्थना सुनकर वे वीतरागभाव के धारक श्री भट्टारक महाराज (मुनिराज) कहने लगे—

'अहो वत्स! अभी तो तुम क्षीण शरीर, कमलदलतुल्य कोमलांगी बालक हो और जिनदीक्षा अत्यन्त दुसह्य है, उसका पालन बालकों से नहीं हो सकता, इसलिए उत्तम श्रावक के व्रत को तुम दोनों ग्रहण करो।

हे पुत्र! तुम दोनों भाई-बहिन यद्यपि संसार-देह-भोगों से विरक्त चित्त हो, इस कारण तुम्हारे परिणाम अभी जिनदीक्षा ग्रहण में वृद्धिगत हो रहे हैं परन्तु तुम अभी सुकुमार अल्प व्यस्क बालक हो; इस कारण मुनिराज के लघु भ्राता क्षुल्लक के व्रत को धारण करो।

कुमार! यद्यपि तुम्हारा हृदय उच्च श्रेणी के आरोहण में संलग्न है, तथापि पहले इस क्षुल्लक व्रत का साधन करो। इसमें पूर्ण सिद्धि मिल जाने के पश्चात् मुनिव्रत अंगीकार करना। ऐसा करने से तुम्हारा निर्वाह पूर्ण रीति से हो जायेगा।

राजकुमार! यह उत्कट श्रावक अर्थात् एकलव्रती तक तो श्रावक ही है, उससे आगे मुनिव्रत होता है। ये ऐलक और क्षुल्लक भी मुनिराज के लघुभ्राता हैं। यह व्रत धारण करने से मुनिव्रत का पालन करना सहज हो जाता है। इसलिए इस समय तुम्हें क्षुल्लक व्रत धारण करने की प्रेरणा देता है।

वत्स! सर्व प्रथम इस बात का विचार करना चाहिए कि इस जीव का शत्रु पाप है और मित्र धर्म है। ऐसा विचार करके जो शास्त्र जानता है, वही श्रेष्ठ ज्ञाता होता है।

राजकुमार! जिस महानुभाव को अपने को निर्दोष ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी रत्नों का पिटारा बनाना हो, उसे तीनों लोक में पति की तरह इच्छा करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थरूपी वनिता स्वयं प्राप्त हो जाती है।

प्रिय अभयरुचिकुमार! हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और परिग्रहानन्द - ये चार प्रकार के रौद्रध्यान और इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन और निदान बन्ध, ये चार प्रकार का आर्तध्यान, ये दोनों ध्यान नरक, तिर्यंचगति के कारण होने से दोनों का त्याग करके निरन्तर धर्मध्यान में तत्पर रहना योग्य है।

जो कामदेव का नाश करनेवाली, समभाव करनेवाली, दुर्गति गमन से निवारण करनेवाली जगत गुरु की शिक्षा और धर्मरूप वृक्ष की वृद्धि के लिये जल सारणी समान है, ऐसी बारह

अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करना योग्य है।

वे बारह भावनायें इस प्रकार हैं—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मभावना।

हे वत्स! मैंने जैसा आचरण कहा है, तू उसी प्रकार से पालन कर अर्थात् तू क्षुल्लकवृत्ति धारण कर क्योंकि मुनिव्रत धारण करने में तू असमर्थ हो जायेगा।

राजन! मैंने उस समय श्री आचार्य की आज्ञा प्रमाण कर संसार-समुद्र पार करने के लिये जहाज समान क्षुल्लक व्रत अंगीकार किया अर्थात् अन्य समस्त वस्त्राभरणों का त्याग करके मात्र एक सफेद वस्त्र और एक लंगोटी मात्र का ग्रहण किया तथा मस्तक के केश को दूर करके पीछी और कमण्डल को धारण किया। इसी प्रकार अभयमति को क्षुल्लिका के व्रत दिये।

हमारे गुरु श्री सुदत्ताचार्य प्रमादरहित जीवों की दयायुक्त पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए यहाँ इस नगर के उद्यान में पधारे हैं और उन्हीं यति-पति के साथ हम भी आये हैं। श्रीगुरु की आज्ञा प्रमाण गुरु के चरण-कमल की वन्दना करके भिक्षार्थ (आहार हेतु) निकले हैं।

तपश्चरण करते हुए तथा जिनभगवान का स्मरण करते हुए, शुभाचरण के धारक हमें मार्ग में गमन करते हुए ये किंकर पकड़कर यहाँ ले आये हैं।

राजन! तुम्हारे सेवकों ने हम दोनों को तुम्हारे सन्मुख लाकर उपस्थित किया , तत्पश्चात् जब तुमने हमारा चरित्र पूछा तो हमने अपना कृतकर्म द्वारा संसार के परिभ्रमणरूप समस्त वृतान्त

आपको कहा है। अब जैसा आपको ठीक लगे वैसा करो।''

❖ ❖ ❖

क्षुल्लक महाराज का उपरोक्त समस्त जीवन चरित्र जानकर मारिदत्त नृप और चण्डिकादेवी दोनों संसार से उदासचित्त होते हुए संसार से विरक्त होकर सर्व प्रथम समस्त पशु युगलों को होम करने का जो कार्य प्रारम्भ किया था, उसका निषेध करके धर्म में तत्पर हुए। उस समय उन दोनों से प्रतिबोधित होकर राजा अपने हृदय में विचार करने लगा—

इस लोक में पवित्र और प्रधान बालक युगल यथार्थ में पूज्य है। मस्तक के ऊपर चूड़ामणि रत्न की भाँति वन्दनीय है।

इस प्रकार चिन्तवन करके मारिदत्त नृपति, चण्डिकादेवी और उसके उपासक भैरवानन्द ने चण्डिका गृह में बलि प्रदान करने के लिये जो कुछ सामग्री उपस्थित की थी, वह सब पृथ्वीतल में फेंक दी। तत्पश्चात् राजा ने कर्मचारियों को बुलाकर कहा—

'हे कर्मचारी! तुम शीघ्र जाओ और उपवन को सुशोभित करो।'

कर्मचारीगण—(हाथ जोड़कर) 'जो आज्ञा महाराज की! अभी जाकर उपवन को श्रृंगारित करते हैं।'

इस प्रकार महाराज की आज्ञा शिरोधारण करके समस्त कर्मचारियों ने शीघ्र जाकर वृक्ष, लता, फल, पुष्पादि से मनोहर वन, जिसकी रक्त पत्रों से युक्त आम की डालियों पर अनेक पक्षी मनोहर ध्वनि करते हुए अत्यन्त रमणीक दृष्टिगत हो रहे थे, उसी

निर्मल वन को मुक्ता फलों की जाली तथा रेशमी वस्त्र, मण्डप और रत्न विनिर्मित चन्दोवा आदि से ऐसा सुशोभित किया कि मानो दूसरा स्वर्ग का विमान ही स्वर्ग की लक्ष्मी को छोड़कर धरती पर आया है।

—इत्यादि प्रकार से वन को सुशोभित करके महाराज के निकट आकर निवेदन किया—

कर्मचारी—'श्री महाराज की जय हो! आपकी आज्ञानुसार पूरा वन सुशोभायुक्त हो गया है।'

इस प्रकार कर्मचारियों की बात सुनकर चण्डिका देवी जो कि अप्रगटरूप से बैठी हुई थी, वह प्रगट होकर महाराज मारिदत्त से कहने लगी—

'राजन! यद्यपि आपके कर्मचारियों ने उपवन को सुशोभित किया है, तथापि मैं श्री क्षुल्लक महाराज के निवास को तपोवन बनाऊँगी।'

मारिदत्त—'मातुश्री! आपकी जो अभिलाषा हो, वही करो।'

इस प्रकार नृपति की सम्मति प्राप्त कर चण्डिकादेवी ने अपनी अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईश्त्व और वशित्व इन अष्ट गुणों द्वारा उस वन को अधिक श्रृंगारित किया।

तत्पश्चात् श्री अभयरुचिकुमार क्षुल्लक, अभयमति क्षुल्लिका तथा मारिदत्त और भैरवानन्द को साथ लेकर महोत्सवपूर्वक तपोवन में ले जाकर उपस्थित किया।

तत्पश्चात् देवोपुनीत सिंहासन पर क्षुल्लक युगल को विराजमान करके स्वयं प्रगट होकर श्री क्षुल्लक महाराज के

सन्मुख उपस्थित हो गयी। वह चण्डमारीदेवी जो थोड़े समय पूर्व अस्थि, माँस, रुधिर, वसा आदि से सर्वांग व्याप्त थी, मनुष्यों के मुण्डों की माला कण्ठ में धारण करके महा भयानक मूर्ति थी, वह श्री क्षुल्लक महाराज का उपदेश सुनकर अपने असली रूप में आकर समस्त हिंसादि कर्म का त्याग करके सौम्य बदन हो गयी।

वह चण्डमारी देवी महावात्सल्यांगधारिणी, प्रसन्न बदना, स्वर्ण का पात्र निज करकमल में धारण करके सौम्यभावयुक्त अपने पैर तक कटिमेखला लटकाती हुई, अदृश्य लावण्य और सौभाग्य से सारभूत लम्बी, हाथ के तेज से मनोहर उछलती स्वच्छ जल से पूर्ण भृंगार से शोभायमान हाथ, जिसके पैर नुपुरों की ध्वनि को सुनकर मयूरगण नृत्य करते हुए उत्तम शब्द कर रहे थे।

वह चण्डमारी देवी नखों की सुन्दर कान्तियुक्त गुरु के चरणों में नमस्कार करके अपना शिष्यपना प्रसिद्ध करती है। तत्पश्चात् जल और कमलयुक्त अर्घ्य द्वारा गुरु की पूजा करके कहने लगी—

'स्वामी! आप तो कृत्रिम मुर्गे को मारने से सम्पूर्ण भववन में भटके हो। मैंने तो असंख्य जीवों को अपनी माया से ग्रसित किया और रुधिर में स्नान किया। अब इस पाप से मैं किस प्रकार मुक्त होऊँगी। इसलिए हे देव! अब मैं पूर्वकृत तीव्र पाप से मुक्त होने के प्रायश्चित्तरूप से तीव्र तप का आचरण करूँगी, जिससे जीव वध से उत्पन्न हुआ हिंसा का पाप नष्ट हो सके।'

क्षुल्लक—'हाँ देवी! व्यन्तरदेव से लेकर सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र पर्यन्त समस्त देवों में तपश्चरण नहीं है, क्योंकि देवों

को उत्कृष्ट चार गुणस्थान होते हैं, इसलिए अव्रत तक रहते हैं। अर्थात् सम्यग्दर्शन तो होता है परन्तु श्रावक के व्रत जो कि पाँचवें गुणस्थान में होते हैं, वे नहीं हो सकते, तो मुनिव्रत किस प्रकार होगा?

हे देवी! इस चतुर्गतिरूप संसार में दूसरे भी असंख्य जीव ऐसे हैं कि जो तप ग्रहण नहीं कर सकते हैं।

हे देवी! यद्यपि समस्त पर्यायों में मनुष्य-पर्याय उत्तम है, क्योंकि मोक्ष का उपाय इस पर्याय के अतिरिक्त अन्य में नहीं है, परन्तु जो मूर्ख मोक्ष के साधनों से अनभिज्ञ होकर विषय में लीन रहते हुए हिंसादिक कर्म में प्रवत्त रहते हैं, वे रौरव नरक में गिरते हैं।'

चण्डिका—'नाथ! चतुर्गतिरूप पाताल कुँए के दुःख से और अत्यन्त भयानक घोर संसार समुद्र में गिरते हुए आपने मुझे बचाया है! स्वामी! आप देवों के देव और जैन सिद्धान्त के रहस्य के पूर्ण ज्ञाता हैं, इसलिए आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपके चरणों की दासी हूँ।'

तत्पश्चात् मारिदत्त राजा कहते हैं—'स्वामी! आपने कहा कि देव पर्याय में तपश्चरण नहीं - वह तो सत्य है, परन्तु यह तो बताओ कि अब मुझे क्या करना चाहिए।'

क्षुल्लक—'राजन! अभी तक तो जो हुआ, वह हुआ, परन्तु अब आज से किंचित् मात्र भी किसी जीव की हिंसा नहीं करना।'

चण्डिका—'पृथ्वीनाथ! आज से समस्त राज्य में इस बात की घोषणा कर देनी चाहिए कि समस्त प्रजा सौम्यभाव धारण करके रौद्रभावों का त्याग करे अर्थात् जो पुरुष, स्त्री, बालक

और वृद्ध वन में–उपवन में या किसी भी जगह साक्षात् पशु को अथवा कृत्रिम पशु की देवता, पितृ इत्यादि के निमित्त से हिंसा करेंगे तो उसका मैं (देवी) गृह–कुटुम्बसहित नाश कर दूँगी।'

इस प्रकार चण्डिका के आदेशपूर्ण वचन सुनकर मारिदत्त नृपति इस प्रकार कहने लगे—

'मातुश्री! आपकी आज्ञा से पहले ही श्री क्षुल्लक महाराज के उपदेश से मेरा हृदय जीव हिंसा से कम्पित हो गया था क्योंकि श्री क्षुल्लक महाराज ने यशोधर के भव में कृत्रिम मुर्गा ही कुलदेवी को अर्पित किया था, उसके ही पाप से इन्होंने संसार में जो परिभ्रमण किया, उसका चरित्र हृदय विदारक है।

हे चण्डिके! ऐसा कौन पत्थर हृदय होगा कि जो श्रीगुरु की भवावली सुनकर जीव हिंसा से भयभीत न हो? मैंने भैरवानन्द की आज्ञानुसार अनेक जीव युगल एकत्रित किये, उससे ही मेरा हृदय कम्पित हो रहा है, उसमें भी आपकी आज्ञा हुई, अब तो अवश्य ही मेरे राज्य में जीव हिंसा नहीं होने दूँगा।'

चण्डिकादेवी, मारिदत्त नृपति को ऐसी आज्ञा करके तथा श्री मुनि के चरणों में नमस्कार करके अदृश्य होकर अपने स्थान को चली गयी।

मारिदत्त नृपति—'स्वामिन! आपने अपनी माता के आग्रह से कृत्रिम मुर्गे का घात करके कुलदेवी को अर्पण किया और इतने पाप से आपने संसार वन में इतना भ्रमण किया तथा इतना क्लेश प्राप्त किया कि जिसका पार नहीं, तो मैंने जो अनेक जीवों के इतने युगलों को मारा है, जिन्हें देखने से वज्र हृदय भी दया से द्रवीभूत हो जाये, किन्तु मेरे हृदय में किंचित् भी दया नहीं आयी।

नाथ! धर्मवत्सल! उपरोक्त पापकर्म से मैं नारकी जीवों के रक्त से व्याप्त अन्धकारमय नारकियों के कोलाहल से पूर्ण महारौरव नरक में गिरकर दुसह्य वेदना का पात्र बनूँगा।

हे गुण रत्नाकर! उपर्युक्त पाप की शान्ति के लिये समस्त पापों की निवृत्ति करनेवाली निर्ग्रन्थ वृत्ति का ही आचरण करूँगा। क्योंकि जब तक निर्जन वन, गिरिगुफा आदि में निवास करके दिगम्बर वृत्ति धारण करके पाणिपात्र-आहार ग्रहण नहीं करूँ, तब तक संसाररूपी दृढ़ बन्धन से मुक्त होना कष्ट साध्य ही नहीं परन्तु असम्भव है। इसलिए आप मुझे जिनदीक्षा प्रदान कर कृतार्थ करो।'

इस प्रकार मारिदत्त नृपति के वचन सुनकर क्षुल्लक महाराज ने कहा—

'राजन! तुम्हारा विचार अति उत्तम है, परन्तु मैं स्वयं महाव्रत का धारक मुनिराज नहीं हूँ, इसलिए तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त यह भी एक नियम और आचार व्यवहार है कि यदि अपने गुरु निकट ही हों तो स्वयं दीक्षा-शिक्षा किसी को न दे और यदि कोई दे तो उसे पापियों की पंक्ति में गिना जाता है। इसलिए आपको मैं अपने गुरु श्री सुदत्ताचार्य के निकट ले जाता हूँ, वे ही आपको दीक्षा-शिक्षा प्रदान करेंगे।'

इस प्रकार श्री क्षुल्लक महाराज के वचन सुनकर मारिदत्त नृप आश्चर्ययुक्त अपने हृदय में विचार करने लगा—

आहा..हा..! जगत में तपस्या के समान कोई महान नहीं है क्योंकि समस्त मनुष्यों में पूज्य मैं; मुझसे पूज्य चण्डिकादेवी तथा देवी के गुरु क्षुल्लक महाराज और उनके भी गुरु श्री सुदत्ताचार्य हैं। यह सब तप की ही महिमा है।

इस प्रकार अपने हृदय में विचार करके फिर विनयपूर्वक हाथ जोड़कर नृपति ने क्षुल्लक महाराज से कहा—'हे रत्न भण्डार! आपके श्रीगुरु कहाँ विराजमान हैं? आप मुझे उनके समीप ले चलें, मैं आने को तैयार हूँ।'

इस प्रकार नृपति की प्रार्थना सुनकर क्षुल्लक महाराज, राजा को अपने साथ लेकर श्री सुदत्ताचार्य के निकट पहुँचे। वे श्री सुदत्ताचार्य महामुनि अवधिज्ञान नेत्र के धारक, देव-मनुष्यों द्वारा पूज्य, आठ मद को निर्मद करके मोहमल को निर्जीत करके गुण समृद्ध अनेक ऋद्धियों के धारक हैं तथा कर्मों के बल को जर्जरित कर दिया है। वे दयानिधि दिगम्बराचार्य तप में स्थित, दस धर्म धारण करते हुए अपने आत्मा के ध्यान में मग्न हैं।

उन महातपस्वी आचार्यश्री के निकट पहुँच कर क्षुल्लक महाराज और मारिदत्त नृपति, इन जगत पूज्य श्रीगुरु के चरणों की वन्दना करके वहीं गुरु के चरणों में बैठ गये। तब गुणों के समूह श्री सुदत्ताचार्य ने धर्मवृद्धि का आशीर्वाद प्रदान किया।

तत्पश्चात् हर्षित चित्त होकर महाराज मारिदत्त ने श्रीगुरु को नमस्कार करके कहा—

'स्वामिन्! मुझे आपकी भवावलि सुनने की अभिलाषा है तथा यह मस्तक नीचा करके बैठे हुए गोवर्धन सेठ के भवों की कथा, मेरे संसार भ्रमण की कथा, भैरवानन्द के संसार की कथा, चण्डमारीदेवी, यशोधर राजा, चन्द्रमति महारानी और महा अवगुणों की खान दुष्चारिणी पापिष्ठा जार-कर्म-दक्षा अमृतादेवी, यशोमति नृप तथा कुसुमावलि के भावों का वर्णन आप कृपा करके कहने का कष्ट करें। जिससे हमारा संशय दूर हो। तदुपरान्त इस घोड़े

के भवों का भी वर्णन करने की कृपा करें।'

इस प्रकार मारिदत्त की प्रार्थना सुनकर आचार्यश्री कहने लगे—

❖ ❖ ❖

"राजन! यदि तेरी यही इच्छा है तो मैं कहता हूँ। तू चित्त लगाकर सुन जिससे तेरे हृदय में से संशय-तिमिर का नाश होकर ज्ञानसूर्य का प्रकाश हो।

राजन! उत्तम ऋद्धियुक्त प्रसिद्ध गन्धर्व नामक देश है, जिसमें कस्तूरी की सुगन्ध से अति सुगन्धमय और अति उन्नत शिखरों की शोभा से गंधर्वनगर की शोभा को तिरस्कार करता हुआ गन्धगिरि नामक पर्वत है।

उस पर्वत के ऊपर शुभाचारी मनुष्यों के निवासयुक्त गन्धर्वपुर नामक नगरी है, जिसमें वैदर्भ नामक राजा हुआ। वह राजा शत्रुवर्ग का घातक और राजनीति में अति निपुण, न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उस वैदर्भ नामक राजा की विन्ध्यश्री नामक अति मनोहरा पतिव्रता रानी थी। वह विन्ध्यश्री अपनी आवाज से कोयल तथा निज गति से हंसनी की विजेता थी। उसकी रूप सम्पदा को देखकर देवांगनायें भी लज्जित होती थीं।

उस विन्ध्यश्री रानी के गर्भ से कामदेव समान अनुपम रूप के धारक, सज्जनों द्वारा प्रशंसनीय गन्धर्वसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा अति कोमल और क्षीण शरीर धारक उत्तम लक्षणों युक्त गन्धश्री नामक पुत्री उत्पन्न हुई।

इन पुत्र-पुत्री का मनोहर युगल ऐसा दृष्टिगत होता था कि

मानो विधाता ने स्वयं इनका लालन-पोषण करके जगत में उत्तमरूप-लावण्ययुक्त बनाया हो। वह युगल जैसा रूपवान था, वैसा ही स्वभाव से सौम्य और मधुर वचनों द्वारा लोगों का मनोरंजन करता था। वह बाल युगल अपनी बाल-लीला से समस्त पुरजन और परिजनों को प्रिय था।

वह गन्धश्री नामक पुत्री सुकोमलांगी, गजगामिनी, मृदुहासिनी, अपने माता-पिता के चित्त को आनन्ददायिनी थी। वह राजा अपनी पुत्री को पुत्र समान मानते हुए राज्य का भोग करता था।

उस वैदर्भ नामक नृपति को मन्त्रविद्या विशारद, सर्व विद्याओं में निपुण, राज्य भार चलाने में चतुर, राम नामक मन्त्री था। उसके रूप, लावण्य, गुण विशिष्टा, पतिव्रता और निजपति की अनुगामिनी चन्द्रलेखा नामक प्रिय पत्नी थी। उसके उदर से उत्पन्न हुआ जितशत्रु नामक पुत्र पृथ्वी पर विख्यात था।

उस जितशत्रु का छोटा भाई भीम, पापकर्म में चतुर, भीम समान बलवान और कपट करने में निपुण था।

राजन! वह वैदर्भ नामक राजा निज चातुर्य और न्याय-परायणतापूर्वक काल व्यतीत करने लगा। एक दिन अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती पुत्री गन्धर्वश्री को देखकर वह अपने मन में विचार करने लगा कि पुत्री विवाह के योग्य हो गयी है, इसके लिये वर खोजना परम आवश्यक है। इस प्रकार विचार कर वह अपनी पत्नी से कहने लगा—

'प्रिय! आज पुत्री को देखकर मुझे उसके विवाह की चिन्ता हो रही है अर्थात् पुत्री विवाहयोग्य हो गयी है। इसलिए उसके लिये योग्य वर की खोज करना चाहिए। वर भी ऐसा होना

चाहिए कि जैसी रूपवती, गुणवती और रूप-लावण्य गुणयुक्त पुत्री है।'

रानी विन्ध्यश्री ने कहा—'प्राणनाथ! आपका कहना सत्य है परन्तु हम तो पुत्री के जन्म और पालन-पोषण के अधिकारी हैं। कन्या के लिये योग्य वर की शोध करना आपके अधिकार में है। इसलिए आप ही मन्त्रियों द्वारा योग्य वर की शोध करें।'

वैदर्भ नृप ने कहा—'हे प्रिय! यद्यपि तुम्हारा कहना परम सत्य है परन्तु तुमसे पूछ लेना भी सर्वथा उचित ही है।'

रानी विन्ध्यश्री ने कहा—'हे देव! यह तो आपकी कृपा है परन्तु अब आप ही जो उचित समझें, उसके साथ पुत्री का पाणिग्रहण करायें।'

इस प्रकार महारानी से वार्तालाप करके, द्वारपाल को बुलाकर, मन्त्री मण्डल को एकत्रित करने की आज्ञा प्रदान की। द्वारपाल ने समस्त मन्त्रियों को बुलाकर एकत्रित किया। राजा ने उनसे इस प्रकार पूछा—

'मन्त्रीगण! आज अपनी सखियों सहित क्रीड़ा करते हुए पुत्री को देखकर पुत्री के विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई है। अतः आप लोग उचित वर की शोध करें।'

राजा की बात सुनकर राम नामक मन्त्री ने कहा—'पृथ्वीनाथ! मैं आपकी आज्ञा शिरोधारण करता हूँ। यद्यपि प्रतापी राजाओं के अनेक पुत्र हैं, तथापि पुत्री के योग्य वर दृष्टिगत नहीं होता, क्योंकि नीति शास्त्र में समस्त गुणयुक्त वर कहा गया है। कहा है कि उत्तम कुल, सुन्दर लोकप्रिय स्वभाव, निरोग शरीर, पूर्ण

आयु, लौकिक और पारमार्थिक विद्या, योग्य धन और स्वामित्व – इन सात गुणों की परीक्षा करना चाहिए। तत्पश्चात् कन्या का भाग्य!

स्वामिन्! उपर्युक्त गुण विशिष्ट राजपुत्र मेरी नजर में नहीं आता क्योंकि बहुत खोज करने पर भी कहीं कुल है तो गुण नहीं—इत्यादि किसी में भी सातों गुण देखने में नहीं आते। इसलिए मेरा कहना तो ऐसा है कि पुत्री स्वयं योग्य वर देखकर उसके गले में वरमाला पहनावे तो अति उत्तम होगा, क्योंकि गन्धश्री स्वयं सामुद्रिकादि अनेक शास्त्रों की ज्ञाता है, वही योग्य वर को वरे तो उत्तम है।'

मन्त्री की बात सुनकर वैदर्भ नृप ने कहा—'तो क्या आपकी राय में स्वयंवर मण्डप बनाना चाहिए?'

राम मन्त्री ने हाथ जोड़कर कहा—'श्री महाराज! अवश्य स्वयंवर मण्डप बनाना पड़ेगा और समस्त राजपुत्रों को निमन्त्रण देना पड़ेगा।'

इस प्रकार राम मन्त्री की बात सुनकर महाराज ने अन्य मन्त्रियों की भी सम्मति चाही तो सभी मन्त्रियों ने भी राम मन्त्री की तरह स्वयंवर मण्डप की ही सलाह दी।

महाराज वैदर्भ ने समस्त मन्त्रियों की अनुमति से स्वयंवर करने का निर्णय करके यह आज्ञा प्रदान की कि स्वयंवर मण्डप की तैयारी कराओ और राजपुत्रों को बुलाने के लिये निमन्त्रण-पत्र भेजो।

सभी कर्मचारियों ने जो जिसका कार्य था, वह उसने पूर्ण किया। स्वयंवर के लिये अति उत्तम अनेक स्तम्भों का मण्डप

तैयार करके राजपुत्रों को बैठनेयोग्य रमणीक मनोरंजक स्थान तैयार किया।

अनेक देशों से आये हुए राजपुत्रों का स्वागत राज्यकर्मचारियों ने सर्व प्रकार से अति उत्तम किया। तत्पश्चात् जिस समय समस्त राजकुमार अपने-अपने वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर मण्डप में बैठे, उसी समय गन्धश्री नामक राजपुत्री ने अपनी सखियोंसहित स्वयंवर मण्डप में आकर समस्त राजकुमारों पर दृष्टिपात किया। उस समय वृद्ध खोजा (दासी) ने समस्त राजकुमारों का नाम, कुल, गुणस्थान, पराक्रम आदि का वर्णन किया परन्तु राजपुत्री के हृदय में एक भी राजकुमार ने प्रवेश नहीं किया परन्तु राम नामक मन्त्री का पुत्र जितशत्रु, जो कि वस्तुत: जितशत्रु था, उसके गले में वरमाला डाल दी।

जिस समय राजपुत्री ने जितशत्रु के गले में वरमाला डाली, उस समय न्यायवान नृपतियों द्वारा धन्य.. धन्य..! वाह.. वाह..! ये शब्द सब ओर से प्रतिध्वनित होने लगे।

तत्पश्चात् विधिपूर्वक राजकुमारी का मन्त्री पुत्र जितशत्रु के साथ पाणिग्रहण हुआ, उस समय शंख, तुरही, भेरी आदि अनेक वाजिंत्रों के शब्द से सर्व दिशायें बहरी होने लगी अर्थात् जोरदार ध्वनि होने लगी। इसके अतिरिक्त दूसरे भी अनेक प्रकार के उत्सवों से विवाह का कार्य सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् जितशत्रु अपनी प्रियासहित सुखपूर्वक मनोरंजक क्रीड़ा करते हुए काल व्यतीत करने लगा।

एक दिन वैदर्भ महाराज शिकार के लिये अनेक शिकारी आदि अनेक शस्त्रधारी सुभटों और हिंसक जानवरों सहित वन

में पहुँचे। वहाँ हिरण के युगल को घास चरते देखकर बाण का निशान लगाया। हिरण और हिरणी दोनों यह आपत्ति देखकर वहाँ से भागने लगे परन्तु भागकर कहाँ जा सकते थे?

राजा ने भी उनके पीछे घोड़ा दौड़ाकर बाण चलाया तो हिरणी बाण से विंधकर धरती पर गिर पड़ी। उस प्राणरहित हिरणी को उस दौड़ते हुए हिरण ने जब नहीं देखा तो दिशा भूलकर चिल्लाते हुए इधर-उधर भ्रमण करने लगा।

वह हिरण निज पत्नी के विरह में व्याकुल होकर भान भूलकर अपने प्राणों का भय तजकर दौड़ते-पड़ते चिल्लाते हुए और आँखों से अश्रुपात बहाते हुए मृत हिरणी के निकट आया।

उस समय हिरण की शोक पूर्ण अवस्था देखकर राजा वैदर्भ का हृदय दयारस से भींगने लगा। उस समय करुणारस से पूर्ण, गर्वरहित होते हुए राजा वैदर्भ अपने हृदय में चिन्तवन करने लगा – धिक्! मैं इन्द्रियों के विषय में आसक्त होकर शारीरिक क्रिया में लम्पट, अज्ञानी होता हुआ इतने समय तक धर्म-अधर्म तथा उसके फल सुख-दुःख से अनभिज्ञ ही रहा।

धिक्कार है मुझे! मैंने विषयों में सुख मानकर कुछ भी परोपकार नहीं किया परन्तु निरपराध जीवों की हिंसा करके पापबन्ध ही किया।

राजा विचार करने लगा कि अब मुझे समस्त पापकर्मों का त्याग करके धर्म सेवन करना ही उचित है, क्योंकि इन विषयों का सेवन करने से कल्पकाल में भी तृप्ति नहीं होती।

इसके अतिरिक्त विषय वर्तमान में तो उत्तम ज्ञात होते हैं परन्तु अन्त समय में अति विषम और नरक में ले जानेवाले हैं।

इस प्रकार संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर नृपति अपने घर जाकर सर्व राज्य मण्डल को एकत्रित करके अपने वैराग्य की बात करने लगा।

यद्यपि समस्त राज कर्मचारीगण और रनवास आदि ने राजा के वैराग्य से शोकाकुल होकर राजा को दीक्षा लेने से रोकने के लिये अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचे, परन्तु वैराग्य विभूषित नृपति किसी भी प्रकार से नहीं रोका और अपने प्रिय पुत्र गन्धर्वसेन को राज्य शासन समर्पित करके स्वयं तपोवन की ओर गमन किया और जैनाचार्य के निकट भगवती जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

उस समय महारानी विन्ध्यश्री ने भी आर्यिकाओं के निकट समस्त परिग्रह का त्याग करके एक श्वेत साड़ी मात्र धारण करके भगवती के यश को प्रकाशित करते हुए आर्यिका के व्रत को ग्रहण किया।

वे वैदर्भ महाराज समस्त वस्त्राभूषणादि परिग्रह का त्याग करके परम दिगम्बरी दीक्षा धारण करके सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी धन से अलंकृत होकर दिशारूप वस्त्र धारण करके महामुनि हुए।

वैदर्भ महाराज मुनि होने के बाद गन्धर्वसेन, शत्रुओं के मान को मर्दन करनेवाले राज्यासन पर विराजित हुआ। वह गन्धर्वसेन गजराज, अश्वरथ, प्यादा आदि राजऋद्धियुक्त, न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

एक दिन वे गन्धर्वसेन महाराज अपनी सेनासहित यत्नपूर्वक पवित्र और निर्मलचित्त अपने पिता वैदर्भ मुनि के निकट गये।

उस समय वैदर्भ मुनिराज संन्यास में विराजमान थे। जिस

समय गन्धर्वसेन को चतुरंग सेनासहित पूर्ण तेजयुक्त देखा, उस समय वैदर्भ मुनि ने अपने हृदय में निदान किया कि मैं मेरे व्रत के प्रभाव से इस प्रकार की ऋद्धि का धारक धरापति होऊँ।

यहाँ श्री ग्रन्थकार कहते हैं कि **अरे रे धिक्कार! इस निदान बन्ध को जिसने अमूल्य रत्न को तन्दुल के तुष में दे दिया! जिस तपश्चरण के प्रभाव से इन्द्रादि पद तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, उस महान फलदायक व्रत के फल को किंचित् विभूति के लोभ में विक्रय कर डाला।**

तत्पश्चात् वे मिथ्यात्व से दूषित वैदर्भ मुनि, आयु के अन्त में मरण प्राप्त करके उज्जैन नगरी में यशोर्ध नामक राजा हुआ। वह यशोर्ध निज यश से समस्त दिग्मण्डल को पूरित करते हुए समुद्रान्त पृथ्वी के स्वामित्व का राजपट अपने सिर पर धारण करता था।

विन्ध्यश्री (वैदर्भ की रानी) जो आर्यिका हुई थी, वह भगवान के चरण-कमल अपने हृदय में धारण करके, तपस्या द्वारा शरीर का शोषण करते हुए और मिथ्यात्व के उदय से गंगादि सरिताओं में तीर्थ की कल्पना करके स्नान करती, अन्त समय मरण को प्राप्त होकर अजितागंज राजा के गृह में चन्द्रमति नामक पुत्री हुई।

वह चन्द्रमति स्वभाव से भोली और बुद्धि से मन्द थी। उसका विवाह महाराज यशोर्ध के साथ हुआ। तत्पश्चात् उन्हें यशोधर नामक पुत्र हुआ।

वह यशोधर अपने परिवार के पोषण में कल्पवृक्ष समान हुआ। एक दिन जब यशोर्ध महाराज को वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब यशोधर को राज्यासन पर आसीन करके समस्त राज्यभार से मुक्त हुए।

तत्पश्चात यशोर्ध महाराज समस्त परिवार और शरीरादि से मोह का परित्याग करके, बारह प्रकार का तप करके अन्त समय में समाधिमरण द्वारा छठवें ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्ग में ऋद्धिधारक देव हुए।

महाराज वैदर्भ की गन्धश्री नामक पुत्री, जो कि मन्त्री पुत्र जितशत्रु के साथ विवाही गयी थी, वह पापकर्म के उदय से अपने देवर अर्थात् जितशत्रु के छोटे भाई भीम में आसक्तचित्त होकर गुप्त रीति से भोगों में आसक्त हो गयी।

एक दिन जितशत्रु ने गुप्त रीति से अपनी पत्नी गन्धश्री का कुत्सित कर्म देख लिया। **सत्य ही है कि अशोभनीय पापकर्म कितना भी छुपाकर किया जाये, परन्तु कभी तो वह प्रगट हो ही जाता है।**

जितशत्रु ने जब अपनी पत्नी का व्यभिचार देखा तो वह तुरन्त स्त्रियों के चरित्र और संसार-देह-भोगों से विरक्त होकर तपोवन में जाकर दिगम्बर जैनाचार्य के निकट जिनदीक्षा धारण करके चिरकाल तक तप करके अन्त समय में समाधिमरण करके चन्द्रमति के गर्भ से यशोधर नामक पुत्र हुआ। वही राजा यशोधर, यशोर्ध महाराज के बाद राज्यशासन करते हुए न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

जितशत्रु की माता अपने पुत्रवधु के व्यभिचार के कारण जितशत्रु को वैराग्य होना सुनकर अपने पति रामसहित ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके अन्त समय में समाधिमरण करके दृढ़ ब्रह्मचर्य के प्रभाव से विजयार्धगिरि पर उत्पन्न हुए। राजा वैदर्भ का पुत्र जो गन्धर्वसेन था, वह भी गन्धश्री का अशोभनीय कर्म सुनकर स्त्रियों

के कुत्सित कर्म की निन्दा करते हुए श्रीमद् जैनमत की शिक्षा ग्रहण करके अनशनादि व्रतों का आचरण करके निदानसहित मरण प्राप्त करके तू मारिदत्त हुआ है। अतः अब तू निज आत्मा का स्वरूप जानकार आत्मकल्याण कर।

❖ ❖ ❖

राजन! मिथिलापुरी नामक एक नगरी में गुणों के समूह से शोभायमान सम्यक्त्वरत्न से विभूषित व्रत-दानरूप कार्य और श्रुत के अर्थ का धारक जिनदत्त नामक श्रावक सेठ प्रचुर द्रव्य का स्वामी था।

नृपवर! राजा यशोधर का घोड़ा जो जलावगाहन के समय भैंसे द्वारा मरण को प्राप्त हुआ था, वह जिनदत्त की गाय के उदर से दृढ़ और दीर्घ शरीर का धारी बैल हुआ।

कालान्तर में एक दिन जब वह बैल मरण के सन्मुख हुआ तब सेठ जिनदत्त ने उसे पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया। उस बैल ने ध्यानपूर्वक णमोकार मन्त्र का श्रवण किया, जिसके फल में हे राजा मारिदत्त! तेरी रुक्मणी रानी के श्रेष्ठ गर्भ से पृथ्वीवलय में प्रतापधारी और शत्रुओं के मान का मर्दन करनेवाला रिपुमर्दन नामक पुत्र हुआ।

नृपवर! राम मन्त्री का छोटा पुत्र जो कि अपनी भाभी गन्धश्री के साथ व्यभिचार सेवन करता था, वह पापकर्म के योग से संसार समुद्र में गिरकर पापिष्ठ कूबड़ा हुआ। कुटिल चित्ता गन्धश्री व्यभिचाररूप कुत्सित कर्म से क्षीण शरीर धारी काल की कुटिलता द्वारा मरण को प्राप्त करके, विमलवाहन राजा की रानी के गर्भ से अमृतादेवी नामक पुत्री हुई। उसके यौवनारम्भ में दैवयोग से

उसका यशोधर महाराज से पाणिग्रहण हुआ।

नृपश्रेष्ठ! वह अमृतादेवी जो कि पूर्वभव में गन्धश्री थी, उसने पूर्व संस्कार से भीम का जीव जो कि कूबड़ा हुआ, उसके साथ पुनः व्यभिचार सेवन किया।

राजन! अब तुम्हें यशोमति और अभयरुचिकुमार की कहानी कहता हूँ।

❖ ❖ ❖

राम मन्त्री जो कि मृत्यु प्राप्त कर विजयार्धगिरि पर उत्पन्न हुआ था, वह दिनकर तुल्य प्रताप का धारक, ब्रह्मचर्यपूर्वक अणुव्रतों का पालन करके समाधिमरण द्वारा शुभकर्म के योग से यशोधर राजा की रानी के गर्भ से यशोमति नामक वीर पुत्र हुआ।

राम मन्त्री की स्त्री जितशत्रु की माता, जो कि ब्रह्मचर्य के प्रभाव से विजयार्धगिरि पर चन्द्रलेखा नामक विद्याधरी हुई थी, वह धर्म सेवन करके अन्त समय में समाधिमरण द्वारा यशोमति राजा की रानी कुसुमावलि हुई।

सुभटों द्वारा रक्षित और तीक्ष्ण खुरों द्वारा चपल, पानी पीते हुए राजा के घोड़े को महिषेश्वर ने जैसे देखा कि तुरन्त ही क्रोध से भरकर घोड़े को मार दिया।

इस प्रकार मुनिराजश्री के वचन सुनकर महाराज मारिदत्त ने श्री मुनिराज को नमस्कार करके पुनः पूछा—'स्वामिन! महिष ने राजा-तुरंग को किस कारण मारा?'

मुनिराज ने समाधान करते हुए कहा—'राजन! यह जीव पूर्व बैर के कारण एक-दूसरे का घात करते हैं। इन दोनों में पूर्व

भव का बैर था अर्थात् घोड़े के जीव ने महिष के जीव का घात किया था। उसी पूर्व बैर के कारण महिष ने घोड़े को मारा है।

पृथ्वीपाल! ज्ञानीजन इसी कारण किसी जीव से बैर धारण नहीं करते, क्योंकि जो एक बार किसी का घात करता है, वह अन्य जन्म में उसके द्वारा स्वयं मृत्यु को प्राप्त होता है।

धरानाथ! जिस बैल के जीव को सेठ ने णमोकार मन्त्र सुनाया था, उसके प्रभाव से उस स्त्री के गर्भ से जन्म लेकर यौवनारम्भ में दिनकर समान प्रताप का धारक राजा होकर पृथ्वी का पालक तेरा पिता हुआ है।

राजन! ये तेरे पिता चिरकालपर्यन्त राज्यपालन करके, भगवान सर्वज्ञ वीतराग के मार्ग के पथिक बनकर भगवती दीक्षा धारण करके घूमते-घूमते एक दिन तेरे नगर के श्रेष्ठ देवीगृह के निकट आये। वहाँ तप करते हुए निज चित्त में इस प्रकार वांछा करने लगे—'मैं तप के प्रभाव से इस देवी की विभूति को प्राप्त करूँ।'

नृपवर! उस मिथ्यादृष्टि ने निदान द्वारा अमूल्य रत्न को कोड़ी में बेच डाला अर्थात् मरकर मिथ्यात्व के योग से स्त्री की पर्याय में चण्डमारी देवी हुई।

तुम्हारी माता का जीव संसार में भ्रमण करके मिथ्यात्व के योग से यह भैरवानन्द हुआ, जिसे तूने बारम्बार प्रणाम किया और जिसकी आज्ञा से इस देवी के बलि चढ़ाने के लिये अनेक जीवों के युगल एकत्रित किये।

अब यह भैरवानन्द जो कि अधोमुख करके करुणारस से भरपूर हृदय से बैठा है, वह मृत्यु पाकर कल्पवासी देव होगा। राजन! उज्जैननगर का यशोवध नामक जगत प्रसिद्ध प्रजापालक

था। वह षट्दर्शन का भक्त था। उसने अनेक कुदेवों के मठ बनाकर उनमें मूर्ति की स्थापना करके, अनेक तालाब बनाये, अनेक धर्मशालायें बनायीं। जिनमें सहस्त्रश: तपस्वियों को भोजन आदि सामग्रियों से तृप्त किया।

तदुपरान्त ऊँची ध्वजा और शिखरों से मण्डित रत्नखचित जिनराज के मन्दिरों की भी उत्तम प्रकार से प्रतिष्ठा करायी, जैन साधुओं को आहारदान भी कराया और दु:खी जीवों को करुणा करके औषध-आहारादि दान भी किया तथा अनेक प्रकार की भोग क्रीड़ा करते हुए चिरकालपर्यन्त राज्यशासन करके, पश्चात् मरण के समय मिश्रभावना के योग से मृत्यु प्राप्त करके कलिंग देश के स्वामी महामद से मदोन्मत्त भगदत्त नामक महाराज की पत्नी से सुदत्त नाम का मैं पुत्र उत्पन्न हुआ।

सुदत्त नाम का मैं राजा, राज्यशासन करने लगा। एक दिन कोतवाल ने दृढ़ बन्धनयुक्त चोर को लाकर मेरे सन्मुख सभागृह में उपस्थित किया और नम्रतापूर्वक इस प्रकार विज्ञप्ति करने लगा—

'श्री महाराज की जय हो! आज यह चोर बहुत ही मेहनत से पकड़ा है, आप इसे योग्य दण्ड प्रदान करने की आज्ञा दें।'

सुदत्त महाराज अर्थात् मैंने कहा—'इस समय इस चोर को कारावास में स्थापित करो, बाद में विचार करके इसे दण्ड दिया जायेगा।'

इस प्रकार मेरी आज्ञा सुनकर कोतवाल, चोर को जेल में लेकर गया।

राजन! कोतवाल, चोर को ले गया, पश्चात् मेरे बाजू में बैठे

हुए विद्वान ब्राह्मणों को मैंने पूछा कि इस दुष्ट चोर को क्या दण्ड देना उचित है ?

एक ब्राह्मण ने कहा—'हे महाराज! पहले इस चोर के पैर, कान, नाक, हाथ, काटना और फिर इसका मस्तक काटना चाहिए।'

दूसरे ब्राह्मण ने कहा—'पृथ्वीनाथ! यद्यपि इस चोर को यही दण्ड उचित है, तथापि ऐसा करने से आप पाप के भागीदार अवश्य होंगे। इसलिए इस पाप से मुक्त होने के प्रायश्चित्त का पहले ही विचार कर लेना आवश्यक है।'

अन्य ब्राह्मण ने कहा—'हे धरानाथ! यद्यपि इनका कहना सर्वथा सत्य है परन्तु राजनीति के विषय में ऐसा विचार नहीं किया जाता, क्योंकि यदि उसके अपराध के योग्य दण्ड न दिया जाये तो भी तुम पाप के भागीदार बनोगे, क्योंकि अपराधी को दण्ड देना राजनीति के अनुसार राजा का धर्म है और यदि अपराधी को योग्य दण्ड नहीं दिया जाये तो समस्त प्रजा अन्यायरूप प्रवर्तन करने लगेगी।'

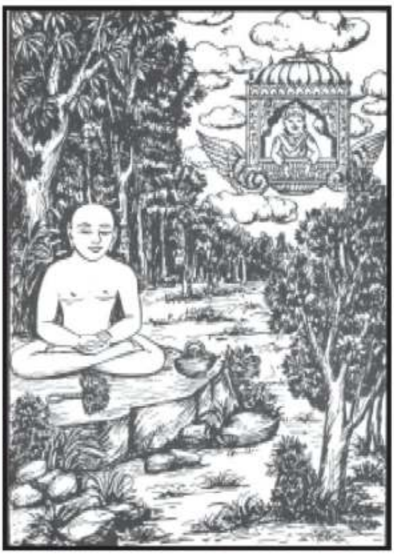

इस प्रकार विद्वान विप्रों की बात सुनकर राजा सुदत्त अर्थात् मैं, मन में विचार करने लगा—अहो! इस संसार में जो करो, उसमें पाप है। यदि दण्ड न दूँ तो पाप और यदि दण्ड दूँ तो भी पाप है। इसलिए समस्त पाप की जड़ यह राज्य ही है। इसलिए इस राज्य का जीर्ण तृण

की भाँति त्याग करके दिगम्बर जिनदीक्षा धारण करूँगा।

इस प्रकार विचार करके समस्त राज्य और परिवार आदि से ममत्व त्यागकर निर्जन वन में समस्त परिग्रह का परित्यागकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। तत्पश्चात् तीर्थ-क्षेत्रादि में पर्यटन करते हुए संघसहित अनेक बार इस नगर में आया।

तत्पश्चात् सुदत्ताचार्य ने भैरवानन्द से कहा कि 'अब तेरा आयुष्य अल्प अवशेष है, इसलिए तू अणुव्रतों का पालन कर।''

❖ ❖ ❖

भैरवानन्द ने संन्यास ग्रहण करके बाईस दिन तक चार प्रकार के आहार का त्याग किया और समाधिमरण करके तीसरे स्वर्ग में देव हुआ।

अभयरुचिकुमार क्षुल्लक ने भी उस समय क्षुल्लकपना त्यागकर जिनदीक्षा अंगीकार की।

अभयमति और कुसुमाबलि दोनों ने आर्यिका के व्रत धारण किये तथा चार प्रकार की आराधना का आराधन करके और बारह प्रकार का तप पन्द्रह दिन के संन्यासपूर्वक समाधिमरण करके दोनों प्राण त्यागकर दूसरे स्वर्ग में देव हुए। इस प्रकार सम्यक्त्व के बल से स्त्री लिंग का छेद करके देव हुए।

तत्पश्चात् श्री सुदत्ताचार्य, सिद्धगिरि पर्वत से समाधिमरण करके सातवें स्वर्ग में गये।

यशोमति राजा, कल्याणमित्र सेठ, अभय मुनि, मारिदत्त, गोवर्धन सेठ—ये सब संन्यास धारण करके, तप-आचरण करके सभी स्वर्ग में गये।

इस प्रकार यशोधरचरित्र पूर्ण हुआ।